श्रीः

अध्यात्मरामायणान्तर्गता

श्रीरामगीता ।

मुरादाबादनिवासी पं० भोलानाथात्मज

पं० रामस्वरूपशर्म्मणा

विरचितया

पदच्छेद-अन्वय-सहितया पदार्थदीपिकया

भावार्थदीपिकया च भाषाटीकया

युता

पं०-रामभद्रशर्म्मणा संशोधिता च

सैव

हरिप्रसादात्मज व्रजवल्लभशर्म्मणा

मुम्बय्यां

निर्णयसागराख्ययंत्रालये मुद्रापयित्वा प्रकाशिता ।

श्रीसं० १९७०. शकाब्दाः १८३५. सनाब्दाः १९१३.

Published by Pandit Vrajavallabha Hariprasad,
Ramwadi, Bombay.

Printed by R. Y. Shedge, at the Nirnaya-sagar Press,
23, Kolbhat Lane, Bombay.

भूमिका.

अय प्रियवर! मुमुक्षु पुरुपो! यद्यपि भारतोद्धारपरायण पण्डित महाशयोंने अनेकानेक वेदान्तके ग्रन्थ रचे हैं, परन्तु '**रामगीता**' भी एक अपूर्वही, वेदान्तमतका प्रतिपादन करनेवाला ग्रन्थ है, क्यों न हो श्रीवेदव्यासजीकी रचना और श्रीरामलक्ष्मणका संवाद, यद्यपि '**श्रीमद्भगवद्गीता**' भी अद्भुतही ग्रन्थ है, परन्तु श्रीरामगीताभी अपने ढँगका अनूठाही ग्रन्थ है, इसमें वेदान्तके पारिभापिक पदार्थोंका इसप्रकार निरूपण कराहै, कि यदि थोड़ेसे वोधवालाभी इस ग्रन्थका तात्पर्य ध्यानमें धरकर कण्ठस्थ करलेय तौ वेदान्तमतके हृदयको पूर्णरीतिसे जान सक्ता है, अतएव इसग्रन्थका अवलोकन करना आवालवृद्ध सम्पूर्ण मुमुक्षु पुरुषोंको परमोपयोगी है, यद्यपि इस ग्रन्थका सरलरीतिसे भापाटीका करनेके लिये मुरादावादनिवासी श्रीयुत शिवलालात्मज **लाला गणेशीलाल**का वहुत दिनोंसे आग्रह था, परन्तु ऐसा अवकाश नहीं मिला कि इस ग्रन्थका टीका रचकर मैं अपने जन्मको कृतार्थ करता, तथापि श्रीयुत भगीरथात्मज**हरिप्रसाद**जीका आग्रह होनेसे मैंने इस ग्रन्थका सरल रीतिसे पदच्छेद अन्वय पदार्थ-और भावार्थ अपनी वुद्धिके अनुसार लिखा, जिससे कि श्रीयुत शिवलालात्मज लाला**गणेशीलाल**जीकाभी चित्त प्रसन्न हुआ, और श्रीयुतपण्डित भगीरथात्मज **हरिप्रसाद**जीकी प्रार्थना पूर्ण हुई, अव इस ग्रन्थके सम्पूर्ण अधिकार पण्डित **हरिप्रसाद भगीरथ**जीको दिये हैं. आशा है कि सज्जन पुरुष इसका अव-

लोकनकर मुझे कृतार्थ करेंगे, और मनुष्यधर्म्मानुसार जो भूल होगी उसको क्षमाकर मुझे सूचित करेंगे ॥

क्योंकि—गच्छतस्स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः ॥
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति साधवः ॥ १ ॥

पश्चिमोत्तरदेशीय मुरादाबादनिवासि-
सर्वहितैषीकार्य्यालयसम्पादक
पण्डितरामस्वरूपशर्म्मा

श्रीरामगीतामाहात्म्यम्।

भाषानुवादसमलंकृतम्।

श्रीरामगीतामाहात्म्यं कृत्स्नं जानाति शंकरः।
तदर्द्धं गिरिजा वेत्ति तदर्द्धं वेदयहं मुने ॥ १ ॥

अर्थः—श्रीरामगीताके सम्पूर्ण माहात्म्यको तौ शिवजीही जानतेहैं, और उसका आधा पार्वती जानतीहैं, और हे मुने! उससे आधा मैं जानताहूँ ॥ १ ॥

तत्ते किञ्चित्प्रवक्ष्यामि कृत्स्नं वक्तुं न शक्यते।
यज्ज्ञात्वा तत्क्षणाल्लोकश्चित्तशुद्धिमवाप्नुयात् ॥ २ ॥

अर्थः—तिसकारण यद्यपि रामगीताका सम्पूर्ण माहात्म्य वर्णन करनेकी सामर्थ्य नहीं है, तथापि कुछ वर्णन करताहूँ, जिस माहात्म्यको जानकर तत्काल पुरुषका अन्तःकरण शुद्ध होजाताहै ॥ २ ॥

श्रीरामगीता यत्पापं न नाशयति नारद।
तन्न नश्यति तीर्थादौ लोके क्वापि कदाचन ॥ ३ ॥

अर्थः—हे नारद! जिस पापको श्रीरामगीता नष्ट नहीं करती है, वह पाप संसारमें कहीं तीर्थादिपर नहीं नष्ट होताहै ॥ ३ ॥

तन्न पश्याम्यहं लोके मार्गमाणोऽपि सर्वदा ॥ ४ ॥

अर्थः—संसारमें ढूँढ़नेसेभी वह पातक देखनेमें नहीं आता जिसको कि श्रीरामगीता नष्ट न करसकै ॥ ४ ॥

रामेणोपनिषत्सिन्धुमुन्मथ्योत्पादितां मुदा।
लक्ष्मणायार्पितां गीतासुधां पीत्वाऽमरो भवेत् ॥५॥

अर्थः—श्रीरामचन्द्रजीने उपनिषदरूपी समुद्रको मथकर उत्पन्न करी, और प्रसन्नतापूर्वक लक्ष्मणजीके अर्थ अर्पण करीहुई श्रीरामगीतारूपी अमृतका पान करके पुरुष अमर होय ॥ ५ ॥

जमदग्निसुतः पूर्वं कार्त्तवीर्य्यवधेच्छया।
धनुर्विद्यामभ्यसितुं महेशस्यान्तिकेऽवसत् ॥ ६ ॥

अधीयमानां पार्वत्या रामगीतां प्रयत्नतः ।
श्रुत्वा गृहीत्वाशु पठन्नारायणकलामगात् ॥ ७ ॥

अर्थः—पहिले जमदग्नि ऋषिके पुत्र श्रीपरशुरामजी कार्तवीर्य्यके वधकी इच्छाकरके धनुर्विद्याका अभ्यास करनेके निमित्त श्रीशिवजीके समीप रहते थे, सो प्रयत्नपूर्वक पार्वतीजीके पढ़नेमें रामगीताका श्रवणकरके तथा चित्तमें ग्रहणकरके शीघ्रही नारायणकी कलाको प्राप्त होगये ॥ ६ ॥ ७ ॥

ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृतिं यदि वाञ्छति ।
श्रीरामगीतामात्रं तु पठित्वा मुच्यते नरः ॥ ८ ॥

अर्थः—यदि पुरुष ब्रह्महत्या आदि पापोंसे छूटना चाहै तौ श्रीरामगीतामात्रका पाठ करके सबप्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाताहै ॥ ८ ॥

दुष्प्रतिग्रहदुर्भोज्यदुरालापादिसम्भवम् ।
पापं यत्कीर्त्तनात्सद्यो रामगीता विनाशयेत् ॥ ९ ॥

अर्थः—जो पाप दुष्ट प्रतिग्रह लेनेसे होताहै, जो पाप निन्दित भोजन करनेसे होताहै, और जो पाप निन्दित भाषण आदिसे होताहै, इन सम्पूर्ण पापोंको श्रीरामगीता कीर्तन करनेसे नष्ट करदेती है ॥ ९ ॥

शालग्रामशिलाग्रे च तुलस्यश्वत्थवृक्षयोः ।
यतीनाम्पुरतस्तद्वद्रामगीतां पठेत्तु यः ॥ १० ॥
स तत्फलमवाप्नोति यद्वाचोऽपि न गोचरम् ॥ ११ ॥

अर्थः—शालग्रामकी मूर्तिके सम्मुख और तुलसी तथा अश्वत्थ (पीपल) के वृक्षके समीपमें और संन्यासियोंके सम्मुख जो पुरुष श्रीरामगीताका पाठ करै, वह इतना फल पाताहै, जो कि कहिनेमें नहीं आसक्ता है ॥ १० ॥ ११ ॥

रामगीतां पठेद्भक्त्या यः श्राद्धे भोजयेद्द्विजान् ।
तस्य ते पितरः सर्वे यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥१२॥

अर्थः—जो पुरुष श्राद्धमें रामगीताका पाठ करै, और ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन करावै उसके सम्पूर्ण पितर विष्णु भगवान्के परमपदको प्राप्त होतेहैं ॥ १२ ॥

स्थित्वाऽगस्त्यतरोर्मूले रामगीतां पठेत्तु यः ।
स एव राघवः साक्षात्सर्वदेवैश्च पूज्यते ॥ १३ ॥

अर्थः—जो पुरुष अगस्त्यके वृक्षकी जड़में बैठकर रामगीताका पाठ करै, वह साक्षात् रामचन्द्ररूप होजाता है. और सम्पूर्ण देवताओंकरके सन्मान किया जाताहै ॥ १३ ॥

विना ज्ञानं विना ध्यानं विना तीर्थावगाहनम् ।
रामगीतां नरोऽधीत्य अनन्तफलमश्नुते ॥ १४ ॥

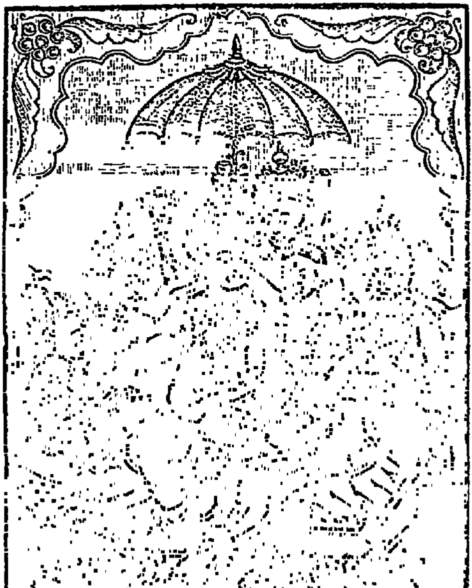
अर्थः—ज्ञानके और ध्यानके विना, तथा तीर्थस्नानके विनाभी पुरुष रामगीतामात्रका अध्ययन (पठन) करके अनन्त फलको प्राप्त होताहै ॥ १४ ॥

बहुना किमिहोक्तेन शृणु नारद तत्त्वतः ।
यस्य विज्ञानमात्रेण वाञ्छितार्थफलं लभेत् ॥ १५ ॥

अर्थः—यहाँ अधिक कहनेसे क्या है? हे नारद! सुनो तत्त्वपूर्वक इस रामगीताको जाननेसेही पुरुषको इच्छितफलकी प्राप्ति होतीहै ॥ १५ ॥

इति श्रीभाषाटीकया सहितमध्यात्मरामायणोक्तं रामगीतामाहात्म्यं समाप्तम् ॥

॥ रामपंचायतन ॥



श्रीः ।

श्रीरामगीता

टीकात्रयसंवलिता ।

योऽच्छिनच्छरपूगेण दशकन्धरकन्धराः ।
तं भजे जानकीजानिं भवरोगभयच्छिदम् ॥१॥

महादेव उवाच ।

ततो जगन्मङ्गलमङ्गलात्मना
विधाय रामायणकीर्त्तिमुत्तमाम् ।
चचार पूर्वाचरितं रघूत्तमो
राजर्षिवर्य्यैरपि सेवितं यथा ॥ १ ॥

पदच्छेद–ततः, जगन्मङ्गलमङ्गलात्मना, विधाय, रामायणकीर्तिम्, उत्तमाम्, चचार, पूर्वाचरितम्, रघूत्तमः, राजर्षिवर्य्यैः, अपि, सेवितम्, यथा ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ–(महादेवः) शिवजी (उवाच) बोले। (रघूत्तमः) रघुकुलमें श्रेष्ठ रामचन्द्रजी। (जगन्मङ्गलमङ्गलात्मना) जगत्का जो मङ्गल कहिये आनन्द उसका मूल आधार मङ्गलस्वरूप जो ब्रह्मानन्द तद्रूप मूर्तिकरके अथवा जगत्का कल्याण जिससे होता है ऐसी मङ्गलमूर्तिकरके (उत्तमाम्) श्रेष्ठ। (रामायणकीर्तिम्) रामायणग्रन्थ है आधार जिसका ऐसी कीर्तिको। (विधाय) करके। (ततः) तदनन्तर। (पूर्वाचरितम्) पूर्वपुरुषोंकरके आचरण करेहुए। (प्रजापालना-

दि×) प्रजाका रक्षण आदि । (राजर्षिवर्य्यैः) राजकार्य्य और ऋषियोंके समान तपश्चर्य्या इन दोनों कार्य्योंको एक-साथ करनेवाले अनेक पुरुषोंकरके (अपि) भी (यथा) जिसप्रकार (सेवितम्) सेवन करा गया था । (तथा+) तिसीप्रकार । (चचार) करते भये ॥ १ ॥

भावार्थ—श्रीशिवजी महाराज बोले कि हे पार्वति! "**तस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति**—उस ब्रह्मानन्दके एक अंशकरके सम्पूर्ण जीव जीवन (आनन्द) को प्राप्त होते हैं" इसप्रकार वेदोंकरके प्रतिपादन करीहुई संसारके मङ्गलकी मूल आधार मङ्गलरूप अर्थात् ब्रह्मानन्दस्वरूप अपनी मूर्तिकरके रघुकुलमणि श्रीरामचन्द्रजी श्रवण करनेवाले पुरुषोंको मोक्ष देनेवाली परमपवित्र और वाल्मीकि आदि अनेक रामायणग्रन्थोंकी आधारभूत अर्थात् जिसके आधारसे वाल्मीकि आदि अनेक रामायणग्रन्थोंकी रचना हुई ऐसा रावणका वध और लोकापवादके कारण सीताका परित्याग आदि कथारूप कीर्त्तिको स्थापन करके, तदनन्तर आपने पूर्वपुरुषोंने जो प्रजापालनादि सत्कर्म्म जिसप्रकार करे थे, तथा जनक आदि बड़े बड़े राजर्षियोंने जो सत्कर्म्म आदरपूर्वक ग्रहण किये थे, तिसी प्रकार प्रजापालनादि कार्य्योंको करने लगे ॥ १ ॥

सौमित्रिणा पृष्ट उदारबुद्धिना
रामः कथाः प्राह पुरातनीः शुभाः ।
राज्ञः प्रमत्तस्य नृगस्य शापतो
द्विजस्य तिर्यक्त्वमथाह राघवः ॥ २ ॥

पद०—सौमित्रिणा, पृष्टः, उदारबुद्धिना, रामः,

कथाः, प्राह, पुरातनीः, शुभाः, राज्ञः, प्रमत्तस्य, नृगस्य, शापतः, द्विजस्य, तिर्यक्त्वम्, अथ, आह, राघवः ॥ २ ॥

अ० प०–(उदारबुद्धिना) उदार है बुद्धि जिनकी ऐसे। (सौमित्रिणा) सुमित्राके पुत्र अर्थात् लक्ष्मणजीकरके। (पृष्टः) प्रश्न करागया है जिनसे ऐसे। (राम) श्रीरामचन्द्रजी। (पुरातनीः) प्राचीन। (शुभाः) मङ्गलरूप। (कथाः) कथाओंको। (प्राह) कहते भए। (अथ) इस अनन्तर। (राघवः) श्रीरामचन्द्रजी। (प्रमत्तस्य) चूके हुए। (नृगस्य) नृगनामवाले। (राज्ञः) राजाको। (द्विजस्य) ब्राह्मणके। (शापतः) शापसे। (तिर्य्यक्त्वम्) तिर्य्यक् योनिका प्राप्त होना। (आह) कहते भए॥ २॥

भा०–गुरु और वेदान्तवाक्योंपर विश्वास करनेवाले, सुमित्रानन्दन, विशुद्धात्मा जो लक्ष्मणजी तिनके प्रश्न करनेपर श्रीरघुकुलमणि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी धर्म्म-अधर्म्मका निर्णय करनेवाली अनेक प्रकारकी प्राचीन कथा कहते भए, तिसी प्रसङ्गमें श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीके अर्थ वर्णन करा कि हे भ्रातः! यदि विना जाने भूलसे भी अधर्म्म हो जाता है तो उसका फल भोगना पड़ता है, और ब्राह्मणकी वस्तुका हरण करना आदि पापसे तो अत्यन्त ही भयभीत रहना चाहिये. देखो, पूर्वकालमें एक नृगनामवाला बड़ा धर्म्मात्मा राजा था, वह नित्य ब्राह्मणोंको अनेक गौ दान करके देता था, उस राजा नृगकी गौओंके समूहमें एक ब्राह्मणकी गौ भूलकर आ मिली थी, राजाको यह बात मालूम नहीं हुई, सो राजाने अनजानसे अन्य गौओंके साथ वह गौ भी दान कर दी, यह वार्त्ता जिस ब्राह्मणकी गौ आ मिली थी उसको मालूम हुई तो उसने दुःखित होकर राजा नृगको शाप

दे दिया, तिस शापसे राजा नृगसरीखे धर्म्मात्मा पुरुषको भी तिर्य्यग्योनि अर्थात् गिरगिटकी योनिमें जाना पड़ा। देखो, न जानकर भी ब्राह्मणका धन हरनेसे ऐसा परिणाम होता है। और इससे यह भी सिद्ध हुआ कि तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके विना किसी प्रकार भी मुक्तिलाभ नहीं होता है ॥ २ ॥

कदाचिदेकान्त उपस्थितं प्रभुं
रामं रमालालितपादपङ्कजम् ।
सौमित्रिरासादितशुद्धभावनः
प्रणम्य भक्त्या विनयान्वितोऽब्रवीत् ॥३

पद०—कदाचित्, एकान्ते, उपस्थितम्, प्रभुम्, रामम्, रमालालितपादपङ्कजम्, सौमित्रिः, आसादितशुद्धभावनः, प्रणम्य, भक्त्या, विनयान्वितः, अब्रवीत् ॥ ३ ॥

अ० प०—(कदाचित्) एक समय। (आसादितशुद्धभावनः) प्राप्त हुआ है सुन्दर विचार जिनको ऐसे। (सौमित्रिः) सुमित्रानन्दन लक्ष्मणजी। (एकान्ते) एकान्तमें। (उपस्थितम्) वैठेहुए। (प्रभुम्) सर्वशक्तिमान्। (रमालालितपादपङ्कजम्) लक्ष्मीकरके लालन करे गये हैं चरणकमल जिनके ऐसे। (रामम्) श्रीरामचन्द्रजीको। (भक्त्या) भक्तिसे। (प्रणम्य) प्रणाम करके। (विनयान्वितः) नम्रतायुक्त। (सन्) होकर। (अब्रवीत्) वोले ॥ ३ ॥

भावार्थ—इसप्रकार अनेक प्रकारकी कथा श्रवण करनेसे और तदनुकूल श्रेष्ठ आचरण करनेसे शुद्ध हुआ है अन्तःकरण जिनका ऐसे सुमित्रानन्दन श्रीलक्ष्मणजी लोकशिक्षाके अर्थ एक समय श्रीरामचन्द्रजीके समीप गये। उस समय श्रीरामचन्द्रजी एकान्त

स्थानमें स्थित थे, और उस समय सर्वशक्तिमान् भवान्के चरण-कमलोंको लक्ष्मीजीका अवतार श्रीजानकीजी सेवन कर रही थीं। श्रीलक्ष्मणजी समीपमें जाकर भक्तिपूर्वक प्रणाम करके नम्रता-पूर्वक बोले॥ ३॥

सौमित्रिः उवाच।

त्वं शुद्धबोधोऽसि हि सर्वदेहिना-
मात्मास्यधीशोऽसि निराकृतिः स्वयम्।
प्रतीयसे ज्ञानदृशां महामते
पादाब्जभृङ्गाहितसङ्गसङ्गिनाम्॥ ४॥

पद०-त्वम्, शुद्धबोधः, असि, हि, सर्वदेहिनाम्, आत्मा, असि, अधीशः, असि, निराकृतिः, स्वयम्, प्रतीयसे, ज्ञानदृशाम्, महामते, पादाब्जभृङ्गाहितसङ्गसङ्गिनाम्॥ ४॥

अ० प०-(महामते!) हे महाबुद्धिमान्। (त्वम्) तुम। (निराकृतिः) प्राकृतशरीररहित। (शुद्धबोधः) शुद्धज्ञान-स्वरूप। (असि) हो। (सर्वदेहिनाम्) सम्पूर्ण प्राणियोंके। (आत्मा) अन्तर्यामी। (असि) हो। (पादाब्जभृङ्गाहितसङ्ग-सङ्गिनाम्) चरणकमलोंके विषे भ्रमरोंकी समान करा है प्रेम जिसने ऐसे अन्तःकरणका है सम्बन्ध जिनको ऐसे। (ज्ञान-दृशाम्) ज्ञानका साधन शास्त्र ही है दृष्टि जिनकी तिनको। (स्वयम्) अपनी इच्छासे। (प्रतीयसे) प्रतीत होते हो॥४॥

भा०-श्रीलक्ष्मणजी बोले कि हे भगवान्! आप परमज्ञानवान हो. वास्तवमें आपका शरीर प्राकृतपुरुषोंकासा नहीं है. आप सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तर्य्यामी तथा आकृतिरहित हो, इस

कारण ही आपका स्वरूप सबको प्रतीत नहीं होता है, किन्तु जो पुरुष भक्तिपूर्वक आपके चरणकमलोंमें भ्रमरकी समान प्रेम करते हैं, और जो पुरुष आपके चरणकमलोंके दर्शनकी इच्छा करके जीवनको व्यतीत करते हैं, तथा जो पुरुष भगवद्भक्तोंका सङ्ग करते हैं वे ही सत्सङ्गी पुरुष आपकी भक्तिको प्राप्त होते हैं, और तिनही भक्तियुक्त ज्ञानी पुरुषोंको आपका प्रत्यक्ष होता है, अन्य पुरुषोंको नहीं ॥ ४ ॥

अहं प्रपन्नोऽस्मि पदाम्बुजं प्रभो
भवापवर्गं तव योगिभावितम् ।
यथाञ्जसाज्ञानमपारवारिधिं
सुखं तरिष्यामि तथानुशाधि माम् ॥५॥

पद०-अहम्, प्रपन्नः, अस्मि, पदाम्बुजम्, प्रभो, भवापवर्गम्, तव, योगिभावितम्, यथा, अञ्जसा, अज्ञानम्, अपारवारिधिम्, सुखम्, तरिष्यामि, तथा, अनुशाधि, माम् ॥ ५ ॥

अ० प०-(प्रभो) हे स्वामिन्! । (अहम्) मैं । (योगिभावितम्) योगियोंकरके ध्यान करे हुए । (भवापवर्गम्) संसारसे निवृत्ति जिससे होती है ऐसे । (तव) आपके । (पदाम्बुजम्) चरणकमलकी । (प्रपन्नः) शरणमें प्राप्त । (अस्मि) हूँ । (यथा) जिस प्रकार । (अञ्जसा) शीघ्र । (अपारवारिधिम्) अपार समुद्रके समान । (अज्ञानम्) अज्ञानको । (सुखम्) सुखपूर्वक । (तरिष्यामि) तर जाऊँ । (तथा) तिस प्रकार । (माम्) मुझको । (अनुशाधि) उपदेश करो॥५॥

भा०-हे सर्वशक्तिमान्! योगियोंके ध्यान करनेयोग्य और संसारबन्धनसे छुटानेवाले आपके चरणकमलोंमें मैं अत्यन्त ही

अनन्यगति होकर, शरणमें प्राप्त हुआ हूँ, हे भगवन्! मैं नम्रतापूर्वक आपसे प्रार्थना करता हूँ कि-संसारका मूलकारण यह अज्ञानरूप अतिकठिनतासे-तरनेयोग्य अपार समुद्र जिसप्रकार शीघ्र ही तरा जाय, ऐसा उपदेश देकर मुझे कृतार्थ करिये ॥ ५ ॥

श्रुत्वाऽथ सौमित्रिवचोऽखिलं तदा
प्राह प्रपन्नार्त्तिहरः प्रसन्नधीः ।
विज्ञानमज्ञानतमोपशान्तये
श्रुतिप्रपन्नं क्षितिपालभूषणः ॥ ६ ॥

पद०–श्रुत्वा, अथ, सौमित्रिवचः, अखिलम्, तदा, प्राह, प्रपन्नार्त्तिहरः, प्रसन्नधीः, विज्ञानम्, अज्ञानतमोपशान्तये, श्रुतिप्रपन्नम्, क्षितिपालभूषणः ॥ ६ ॥

अ० प०–(अथ) इसके अनन्तर । (अखिलम्) सम्पूर्ण (सौमित्रिवचः) सुमित्रानन्दन श्रीलक्ष्मणजीका कथन । (श्रुत्वा) श्रवण करके । (प्रसन्नधीः) प्रसन्न हुआ है मन जिनका ऐसे । (तदा) तिस समय । (प्रपन्नार्त्तिहरः) शरणागतके दुःखोंको हरनेवाले । (क्षितिपालभूषणः) क्षितिपालोंमे भूषणरूप (रामः+) श्रीरामचन्द्रजी । (अज्ञानतमोपशान्तये) अज्ञानरूप अन्धकारकी शान्तिके अर्थ । (श्रुतिप्रपन्नम्) वेदोंके अनुकूल । (विज्ञानम्) आत्मज्ञानको । (प्राह) कहते भए ॥६॥

भा०–श्रीशिवजी महाराज बोले कि हे पार्वति ! शरणागत पुरुषोंका तत्काल दुःख दूर करनेवाले राजशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी श्रीलक्ष्मणजीके सम्पूर्ण कथनको यथावत् श्रवण करके मनमें अत्यन्त प्रसन्न हुए, और श्रीलक्ष्मणजीके अज्ञानरूप

अन्धकारको दूर करनेके निमित्त वेदोंके भी मान्य तत्त्वज्ञानको लक्ष्मणजीके अर्थ वर्णन करने लगे ॥ ६ ॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

आदौ स्ववर्णाश्रमवर्णिताः क्रियाः
कृत्वा समासादितशुद्धमानसः ।
समाप्य तत्पूर्वमुपात्तसाधनः
समाश्रयेत्सद्गुरुमात्मलब्धये ॥ ७ ॥

पद०-आदौ, स्ववर्णाश्रमवर्णिताः, क्रियाः, कृत्वा, समासादितशुद्धमानसः, समाप्य, तत्पूर्वम्, उपात्तसाधनः, समाश्रयेत्, सद्गुरुम्, आत्मलब्धये ७

अ० प०-(पुरुषः+) पुरुष । (आदौ) प्रथम । (स्ववर्णाश्रमवर्णिताः) अपने वर्ण और आश्रमके लिये वर्णन करी हुई। (क्रियाः) क्रियाओंको । (कृत्वा) करके । (समासादितशुद्धमानसः) हुआ है शुद्ध मन जिसका ऐसा । (तत्पूर्वम्) कर्म्मानुष्ठानपूर्वक । (उपात्तसाधनः) प्राप्त हुआ है साधन जिसको ऐसा । (सन्+) होकर । (तत्) उस कर्म्मानुष्ठानको । (समाप्य) समाप्त करके । (आत्मलब्धये) आत्मज्ञानकी प्राप्तिके अर्थ । (सद्गुरुम्) ब्रह्मज्ञानी गुरुको । (समाश्रयेत्) सेवन करै ॥ ७ ॥

भा०-इन चारों वर्णोंमेंसे जिस वर्णके विषे जन्म ले तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास, इन चारों आश्रमोंमेंसे जिस आश्रमको स्वीकार करै, उस वर्ण और आश्रमके अर्थ वर्णन करे

---

१ "तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्" इति श्रुतिः । अर्थ-'ब्रह्मज्ञानके लिये सद्गुरुके ही समीपमें जावे' ऐसी श्रुति है ।

हुए नित्यनैमित्तिक कर्म्मोंको शास्त्रोक्त (शास्त्रोंमें कही हुई) विधिसे आचरण करै और अन्तःकरणको शुद्ध करके वशमें करै तथा कर्म्मानुष्ठानपूर्वक इन्द्रियनिग्रह आदि साधनोंको धारण करै. इस प्रकार दोनों साधनोंके सिद्ध होनेके अनन्तर कर्म्मानुष्ठानका त्याग करके आत्मज्ञानकी प्राप्तिके हेतु जो 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्य हैं तिनके अर्थका विचार करनेके निमित्त वेदवेत्ता और ब्रह्मनिष्ठ गुरुका सेवन करै ॥ ७ ॥

क्रिया शरीरोद्भवहेतुराहता
प्रियाऽप्रियौ तौ भवतः सुरागिणः ।
धर्मेतरौ तत्र पुनः शरीरकं
पुनः क्रिया चक्रवदीर्यते भवः ॥ ८ ॥

पद०–क्रिया, शरीरोद्भवहेतुः, आहता, प्रियाप्रियौ, तौ, भवतः, सुरागिणः, धर्मेतरौ, तत्र, पुनः, शरीरकम्, पुनः, क्रिया, चक्रवत्, ईर्यते, भवः ॥ ८ ॥

अ० प०– (आहता) आदरपूर्वक सम्पादन करी हुई । (क्रिया) क्रिया । (शरीरोद्भवहेतुः) शरीरकी उत्पत्तिका कारण होती है । (तत्र+) तिस जन्ममें । (सुरागिणः) विषयोंके विषे प्रीति करनेवालोंको । (तौ) वे (धर्मेतरौ) धर्म और अधर्म्म । (प्रियाप्रियौ) सुख और दुःख देनेवाले । (भवतः) होते हैं । (तत्र) तहाँ । (पुनः) फिर । (शरीरकम्) शरीर । (पुनः) फिर । (क्रिया) क्रिया । (एवम्+) इसप्रकार । (भवः) संसार । (चक्रवत्) चक्रकी समान । (ईर्य्यते) कहा जाता है ॥ ८ ॥

भा०—श्रीरामचन्द्रजी बोले कि हे लक्ष्मण! प्राणी पूर्वजन्म-के विषे जो कर्म्म करता है, उसका फल प्राणीका विद्यमान शरीर मिलता है, और इस जन्मके विषे वह प्राणी विषयोंमें आसक्त होकर वर्ताव करता है, तब उससे शास्त्रोंके विषे वर्णन करे हुए धर्म्म और अधर्म्म होते हैं, अर्थात् किसी प्राणीके मनको धर्म्माचरण प्रिय प्रतीत होता है, और किसीके मनको अधर्म्म प्रिय प्रतीत होता है, इस प्रकार इस जन्मके विषे जो कर्म्मसञ्चय होता है, तिस कर्म्मसञ्चयसे प्राणीको फिर जन्म धारण करना पड़ता है, तिस जन्ममें फिर कर्म्म करता है, इसप्रकार कर्म्मसे जन्म और जन्ममें कर्म्म होता है, इसकारण संसार चक्रकी समान कहाता है ॥ ८ ॥

अज्ञानमेवास्य हि मूलकारणं
तद्धानमेवात्र विधौ विधीयते।
विद्यैव[1] तन्नाशविधौ पटीयसी
न कर्म्म तज्जं सविरोधमीरितम्॥ ९ ॥

पद०—अज्ञानम्, एव, अस्य, हि, मूलकारणम्, तद्धानम्, एव, अत्र, विधौ, विधीयते, विद्या, एव, तन्नाशविधौ, पटीयसी, न, कर्म, तज्जम्, सविरोधम्, ईरितम् ॥ ९ ॥

अ० प०—(अज्ञानम्) अज्ञान (एव) निश्चयकरके। (अस्य) इस संसारचक्रका। (मूलकारणम्) मुख्य कारण है। (अत्र) इस। (विधौ) कर्त्तव्यमें। (तद्धानम्) तिस अज्ञानका नाश (एव) ही। (विधीयते) विधान करा है।

1 "अविरोधितया कर्म नाऽविद्यां विनिवर्तयेत्। विद्याऽविद्यां निहन्त्येव तेजस्तिमिरसङ्घवत्" ॥ १ ॥

(विद्या) ज्ञान । (तन्नाशविधौ) तिस अज्ञानका नाश करनेके कार्य्यमें । (पटीयसी) पूर्ण समर्थ है । (कर्म्म) कर्म्म । (न) नहीं है । (यतः+) क्योंकि । (तत्+) वह कर्म्म । (तज्जम्) तिस अज्ञानसे ही उत्पन्न हुआ है । (अपि-च+) और । (यत्+) जो । (सविरोधम्) विरोधयुक्त । (भवति+) होता है । (तत्+) वह । (नाशकम्+) नाश-करनेवाला । (ईरितम्) कहा है ॥ ९ ॥

भा०—श्रीरामचन्द्रजी बोले कि हे लक्ष्मण! इस संसारचक्रका मूलकारण अज्ञान ही है, संसारसे मुक्त होनेके अर्थ शास्त्रोंमे जो विधि वर्णन करी है वह यह है कि अज्ञानको दूर करै, और तिस मूलकारणरूप अज्ञानका नाश करनेमें पूर्णरीतिसे समर्थ है तो आत्मज्ञान ही है, और कर्मोंसे अज्ञानका नाश नहीं होता है, क्योंकि कर्म अज्ञानसे ही उत्पन्न हुए हैं, इस कारण कर्मोंका और अज्ञानका विरोध अर्थात् द्वेषभाव नहीं है, और रीति ऐसी है कि जिसका जिससे विरोध होता है, वह उसका नाश कर सकता है, इसकारण अज्ञानका नाश अज्ञानका विरोधी जो ज्ञान तिससे ही होगा ॥ ९ ॥

नाज्ञानहानिर्न च रागसङ्क्षयो
भवेत्ततः कर्म सदोषमुद्भवेत् ।
ततः पुनः संसृतिरप्यवारिता
तस्माद्बुधो ज्ञानविचारवान्भवेत् ॥१०॥

पद०—न अज्ञानहानिः, न, च, रागसंक्षयः, भवेत्, ततः, कर्म, सदोषम्, उद्भवेत्, ततः, पुनः,

संसृतिः, अपि, अवारिता, तस्मात्, बुधः, ज्ञान-विचारवान्, भवेत् ॥ १० ॥

अ० प०–(ततः) तिस कर्म्मसे (अज्ञानहानिः) अज्ञानका नाश । (न) नहीं । (भवति+) होता है । (रागसंक्षयः) आसक्तिका नाश । (च) भी । (न) नहीं । (भवेत्) होगा । (परन्तु) किन्तु । (सदोषम्) दोषयुक्त । (कर्म्म) कर्म । (उद्भवेत्) होगा । (ततः) तिस कर्म्मसे । (पुनः) फिर । (अपि) भी । (अवारिता) जिसका निवारण न होसके ऐसा । (संसृतिः) संसार । (भवति+) होता है । (तस्मात्) तिसकारण । (बुधः) विवेकी पुरुष । (ज्ञानविचारवान्) वेदान्तवाक्योंका विचार करनेवाला । (भवेत्) होय ॥ १० ॥

भा०–कर्म्मानुष्ठानसे अज्ञानका भी नाश नहीं होता है, और विषयोंसे आसक्ति भी दूर नहीं होती है, किन्तु और उलटा दोषयुक्त अर्थात् जिसका स्वर्गादिरूप फल नाशवान् होता है ऐसा नवीन कर्म्म ही उत्पन्न होता है, तिस कर्मसे प्राणी फिर संसारको भोगने लगता है, संसारकी निवृत्ति कर्मानुष्ठानसे नहीं होती है, इस प्रकार कर्म्मानुष्ठानसे मोक्षप्राप्तिकी अभिलाषा करना व्यर्थ है, इस कारण विवेकी पुरुषोंको योग्य है कि जिससे आत्मज्ञान होता है ऐसे वेदान्तवाक्योंका विचार करैं ॥ १० ॥

ननु क्रिया वेदमुखेन चोदिता
यथैव विद्या पुरुषार्थसाधनम् ।
कर्त्तव्यता प्राणभृतः प्रचोदिता
विद्यासहायत्वमुपैति सा पुनः ॥ ११ ॥

पद०—ननु, क्रिया, वेदमुखेन, चोदिता, यथा, एव, विद्या, पुरुषार्थसाधनम्, कर्त्तव्यता, प्राणभृतः, प्रचोदिता, विद्यासहायत्वम्, उपैति, सा, पुनः॥ ११॥

अ० प०—(ननु) शङ्का होती है कि। (यथा) जिस-प्रकार। (विद्या) ज्ञान। (वेदमुखेन) श्रुतिस्मृतिपुराणादिरूप वेदके मुखकरके। (पुरुपार्थसाधनम्।) पुरुपार्थ अर्थात् मोक्षका साधन। (चोदिता) कही है। तथा+) तिसी प्रकार। (क्रिया) कर्म (एव) भी है। (पुनः) फिर। (प्राणभृतः) प्राणीको। (कर्त्तव्यता) अवश्य करना चाहिये इसप्रकार। (प्रचोदिता) कही हुई (सा) वह क्रिया। (विद्यासहायत्वम्) ज्ञानकी सहायकताको। (उपैति) प्राप्त होती है॥ ११॥

भा०—ज्ञान और कर्म्म इन दोनोंकी प्राप्ति होती है तब मोक्ष मिलता है, इन दोनोंमें किसी एकसे अर्थात् केवल ज्ञानसे या केवल कर्म्मसे मोक्षकी प्राप्ति नहीं होसकती है, इसप्रकार कहने-वाले कोई पुरुप हैं उनको समुच्चयवादी कहते हैं, इस प्रस्तुत विपयपर उनकी ऐसी शङ्का है कि जिसप्रकार "ब्रह्मविदाप्नोति परम्—ब्रह्मज्ञानी उत्तमपद (मुक्ति) को प्राप्त होता है" इत्या-दि वचनोंके द्वारा श्रुति-स्मृति-पुराण आदिरूप वेदके मुखकरके ज्ञानको परमपुरुपार्थरूप मोक्षका साधन वर्णन करा है, तिसी प्रकार "उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः। तथैव ज्ञानकर्म्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम्—जिसप्रकार आकाशके विषे पक्षी दोनों ही पक्षोंसे उड़ सकते हैं एकसे नहीं, तिसीप्रकार ज्ञान और कर्म्म दोनोंहीसे शाश्वत (सनातन) ब्रह्मकी प्राप्ति होती है, अकेले ज्ञान या कर्म्मसे नहीं होती है" इत्यादि वचनोंके द्वारा ज्ञानके साथ कर्म्मको भी ब्रह्मप्राप्तिका साधन वर्णन करा है।

और नित्य नैमित्तिक कर्म्म प्राणीको अवश्य करने चाहिये ऐसा कहा है अतः उनके न करनेसे प्रत्यवाय उत्पन्न होकर ज्ञानकी उत्पत्ति ही न होगी तब मोक्षप्राप्ति कैसे होगी इससे यह सिद्ध होता है कि कर्म्म मोक्षकी प्राप्तिमें ज्ञानकी सहायता करता है ॥ ११ ॥

कर्माकृतौ दोषमपि श्रुतिर्जगौ
तस्मात्सदा कार्यमिदं मुमुक्षुणा ।
ननु स्वतन्त्रा ध्रुवकार्यकारिणी
विद्या न किञ्चिन्मनसाप्यपेक्षते ॥१२॥

पद०-कर्माकृतौ, दोषम्, अपि, श्रुतिः, जगौ, तस्मात्, सदा, कार्यम्, इदम्, मुमुक्षुणा, ननु, स्वतन्त्रा, ध्रुवकार्यकारिणी, विद्या, न, किञ्चित्, मनसा, अपि, अपेक्षते ॥ १२ ॥

अ० प०-(श्रुतिः) वेद। (कर्म्माकृतौ) । कर्म्मके न करनेपर। (दोपम्) दोप। (अपि) भी। (जगौ) कहता है। (तस्मात्) तिसकारण । (मुमुक्षुणा) मोक्षप्राप्तिकी इच्छा करनेवाले पुरुपको । (इदम्) यह कर्म्म (सदा) सर्वकालमें। (कार्य्यम्) करना चाहिये । (ननु) निश्चयकरके । (स्वतन्त्रा) स्वतन्त्र (ध्रुवकार्य्यकारिणी) स्थिर कार्य्य करनेवाली। (विद्या) विद्या अर्थात् ज्ञान । (मनसा) मनकरके। (अपि) भी। (किञ्चित्) कुछ। (न) नहीं। (अपेक्षते) इच्छा करती है ॥ १२ ॥

भा०-“वयस्याग्निहोत्रदर्शपौर्णमासचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितं च, आहुतमवैश्वदेवविधिना हुतमासप्तमांस्तस्य लोकान् हिनस्ति” और “वीरहा वा एष देवानां योऽग्निमुद्वासयते” इत्यादि श्रुति-

योंने कर्म्म न करनेपर दोष वर्णन करा है, इसकारण मुमुक्षु पुरुषोंको कर्म्म नित्य करना चाहिये, इस पूर्वोक्त विषयके उत्तरमें सिद्धान्तीका वचन ऐसा है कि जिसप्रकार प्रकाश अन्धकारका नाश कर सकता है, तिसीप्रकार ज्ञान स्वतन्त्रपनेसे अर्थात् विना किसीकी सहायताके ही स्थिर अर्थात् अविनाशी मोक्षरूप कार्यको करता है, ज्ञान कदापि अपने कार्य्यमें किसीकी सहायताकी इच्छा नहीं करता है ॥ १२ ॥

न सत्यकार्योऽपि हि यद्वदध्वरः
प्रकाङ्क्षतेऽन्यानपि कारकादिकान् ।
तथैव विद्या विधितः प्रकाशितै-
र्विशिष्यते कर्मभिरेव मुक्तये ॥ १३ ॥

पद०-न, सत्यकार्यः, अपि, हि, यद्वत्, अध्वरः, प्रकाङ्क्षते, अन्यान्, अपि, कारकादिकान्, तथा, एव, विद्या, विधितः, प्रकाशितैः, विशिष्यते, कर्मभिः, एव, मुक्तये ॥ १३ ॥

अ० प०-(न) नहीं। (यद्वत्) जिसप्रकार। (सत्यकार्य्यः) स्थिर है फल जिसका ऐसा। (अपि) भी। (अध्वरः) यज्ञ। (अन्यान्) दूसरे। (कारकादिकान्) प्रयाज-अनुयाज आदि अङ्गोंको। (प्रकाङ्क्षते) अपेक्षा करता है (तथा) तैसे। (एव) ही। (विद्या) ज्ञान। (विधितः) विधिवाक्योंसे। (प्रकाशितैः) स्पष्ट कहे हुए। (कर्म्मभिः) कर्म्मोंकरके। (एव) ही। (मुक्तये) मुक्तिके अर्थ। (विशिष्यते) समर्थ होता है ॥ १३ ॥

भा०-पहिले कहेहुए विषयपर समुच्चयवादी कहता है कि तुमने जो ऊपरके श्लोकमें कहा सो ठीक नहीं है, क्योंकि जिस

प्रकार यज्ञका फल वेदोंके विषे जैसा कहा है, वैसा ही मिलैगा, तथापि वह यज्ञ अपनी साङ्गोपाङ्ग समाप्तिके अर्थ प्रयाज अनुयाज आदि अन्य अङ्गोंकी अपेक्षा करता है, तिसीप्रकार ज्ञानका फल मोक्ष तो अवश्य ही होगा, परन्तु वह ज्ञान विधिवाक्य कहिये आज्ञा करनेवाले वेदवाक्योंकरके कहे हुए कर्म्मानुष्ठानकी सहायताकी अपेक्षा करता है, तबहीं मोक्ष देनेमें समर्थ होता है, कर्म्मानुष्ठानकी सहायताके विना ज्ञान कदापि मोक्ष देनेमें समर्थ नहीं होता है ॥ १३ ॥

केचिद्वदन्तीति वितर्कवादिन-
स्तदप्यसद्दृष्टविरोधकारणात् ।
देहाभिमानादभिवर्द्धते क्रिया
विद्या गताहङ्कृतितः प्रसिद्ध्यति ॥१४॥

पद०–केचित्, वदन्ति, इति, वितर्कवादिनः, तत्, अपि, असत्, दृष्टविरोधकारणात्, देहाभिमानात्, अभिवर्द्धते, क्रिया, विद्या, गताहङ्कृतितः, प्रसिद्ध्यति ॥ १४ ॥

अ०प०–(इति) इसप्रकार । (केचित्) कोई । (वितर्कवादिनः) कुतर्क निकालकर बोलनेवाले । (वदन्ति) कहते हैं । (तत्) सो । (अपि) भी । (दृष्टविरोधकारणात्) दीखते हुए विरोधके कारणसे । (असत्) अयोग्य है । (क्रिया) कर्म । (देहाभिमानात्) शरीरके विषे अभिमान करनेसे । (अभिवर्द्धते) वृद्धिको प्राप्त होता है । (विद्या) ज्ञान । (गताहङ्कृतितः) दूर हुआ है अहङ्कार जिसका उसको । (प्रसिद्ध्यति) सिद्ध होता है । ॥ १४ ॥

भा०–श्रीरामचन्द्रजी बोले कि हे लक्ष्मण ! जिसप्रकार

केवल कर्म्मको मोक्षका साधन कहना नहीं वनता तिसीप्रकार केवल ज्ञान भी मोक्षका साधन नहीं होसकता, इसप्रकार जो कोई कुतर्कवादी कहते हैं सो ठीक नहीं है, क्योंकि कर्म्म और ज्ञानका प्रत्यक्ष विरोध प्रतीत होता है. देखो, जड़ देहके विषे मैं चेतन हूं ऐसा अभिमान होनेपर प्राणीके हाथसे कर्म्म वृद्धिको प्राप्त होता है, और देहके विषे अहम् ममत्वरूप अभिमान दूर होनेसे प्राणीको ज्ञानकी प्राप्ति होती है, इसप्रकार परस्पर विरोध रखनेवाले ज्ञान और कर्म्मरूप दो पदार्थ परस्पर सहायक होकर, किसी कार्य्यको कैसे करसकते हैं? अर्थात् कदापि नहीं करसकते ॥ १४ ॥

विशुद्धविज्ञानविरोचनाञ्चिता
विद्यात्मवृत्तिश्चरमेति भण्यते।
उदेति कर्माखिलकारकादिभि-
र्निहन्ति विद्याऽखिलकारकादिकम् १५

पद०-विशुद्धविज्ञानविरोचनाञ्चिता, विद्या, आत्मवृत्तिः, चरमा, इति, भण्यते, उदेति, कर्म, अखिलकारकादिभिः, निहन्ति, विद्या, अखिलकारकादिकम् ॥ १५ ॥

अ० प०-(सद्भिः+) साधुपुरुषोंकरके। (विशुद्धविज्ञानविरोचनाञ्चिता) जिन वेदान्तवाक्योंसे निर्म्मल आत्मज्ञान होता है तिनके विचारसे प्राप्त हुई। (चरमा) अन्तकी। (आत्मवृत्तिः) ब्रह्माकार अन्तःकरणकी वृत्ति। (विद्या) विद्यानामवाली है। (इति) इसप्रकार। (भण्यते) कहा जाता है। (कर्म्म) कर्म्म। (अखिलकारकादिभिः) सम्पूर्ण अङ्ग उपाङ्गोंके योगसे। (उदेति) उदयको प्राप्त

होता है। (विद्या) ज्ञान। (अखिलकारकादिकम्) सम्पूर्ण कारकादि अर्थात् कर्तृत्वादि बुद्धिको। (निहन्ति) नष्ट करता है॥ १५॥

भा०—परम निर्म्मल आत्मतत्त्वका ज्ञान करानेवाले वेदान्तवाक्योंका पूर्ण रीतिसे विचार करनेपर अन्तिम जो अन्तःकरणकी ब्रह्माकार वृत्ति होती है, उसको विद्या (तत्त्वज्ञान) कहते हैं, और कर्म्म सम्पूर्ण प्रयाज अनुयाज आदि कारकोंके योगसे उदयको प्राप्त होता है, और तत्त्वज्ञान सम्पूर्ण कारक कहिये कर्तृत्वबुद्धि आदिको नष्ट करता है, इसप्रकार कर्म्मका और ज्ञानका परस्पर विरोध है, इसकारण कर्म्म और ज्ञानका एकत्र निवास कदापि नहीं होसकता. कर्म्म चित्तशुद्धि करता है, इसकारण ज्ञानकी उत्पत्तिका कारणमात्र है, ज्ञानको अपने फलरूप मोक्षके देनेमें कर्म्मकी अपेक्षा बिलकुल नहीं है॥ १५॥

तस्मात्त्यजेत्कार्य्यमशेषतः सुधी-
र्विद्याविरोधान्न समुच्चयो भवेत्।
आत्मानुसन्धानपरायणः सदा
निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिगोचरः॥ १६॥

पद०—तस्मात्, त्यजेत्, कार्य्यम्, अशेषतः, सुधीः, विद्याविरोधात्, न, समुच्चयः, भवेत्, आत्मानुसन्धानपरायणः, सदा, निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिगोचरः॥ १६॥

अ० प०—(विद्याविरोधात्) ज्ञानसे विरोध होनेके कारण। (समुच्चयः) मेल अर्थात् एकत्र रहना। (न) नहीं (भवेत्) होसकता। (तस्मात्) तिसकारण। (सुधीः) विचारवान् पुरुष। (अशेषतः) सर्वथा। (कार्य्यम्) कर्म्म-

को। (त्यजेत्) त्याग देवे। (मुमुक्षुः+) मोक्षकी इच्छा करनेवाला पुरुष। (सदा) सर्वकालमें। (निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिगोचरः) दूर हुआ है सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी वृत्तियोंका विषय जिससे ऐसा। (सन्×) होकर। (आत्मानुसन्धानपरायणः) आत्माका प्रकाश है मुख्य ग्रहण करनेयोग्य जिसको ऐसा। (भवेत्) होय ॥ १६ ॥

भा०—कर्म्मका ज्ञानसे विरोध होनेके कारण ज्ञान और कर्म्म दोनोंका समुच्चय (मेल)नहीं होसकता, इसकारण विवेकी (मुमुक्षु) पुरुष कर्म्मका सर्वथा त्याग करै अर्थात् सकाम कर्म्मोंको तो कदापि करै नहीं, परन्तु चित्तकी शुद्धि होनेपर्य्यन्त केवल नित्य नैमित्तिक कर्म्मोंको करै, तदनन्तर सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी वृत्तियोंको शब्द-स्पर्श आदि विषयोंसे छुटावे, और केवल परमानन्दमय आत्मरूपके विषे लीन होनेके उपायमें तत्पर रहै ॥१६॥

यावच्छरीरादिषु माययात्मधी-
स्तावद्विधेयो विधिवादकर्मणाम्।
नेतीति वाक्यैरखिलं निषिध्य त-
ज्ज्ञात्वा परात्मानमथ त्यजेत्क्रियाः १७

पद०—यावत्, शरीरादिषु, मायया, आत्मधीः, तावत्, विधेयः, विधिवादकर्मणाम्, न, इति, इति, वाक्यैः, अखिलम्, निषिद्ध्य, तत्, ज्ञात्वा, परात्मानम्, अथ, त्यजेत्, क्रियाः ॥ १७ ॥

अ० प०–(यावत्) जबतक। (मायया) अज्ञानकरके। शरीर और इन्द्रियआदिके विषे। (आत्मधीः) 'मैं हूं मेरा है' इत्यादि बुद्धि करनेवाला। (भवति+)होता है। (तावत् तबतक। (एव+) ही। (विधिवादकर्म्मणाम्) विधि-

वाक्योंने कही है कर्त्तव्यता जिनकी ऐसे कर्म्मोंका। (विधेयः) आज्ञापालक; कर्म्म करनेवाला। (भवति+) होता है। (अखिलम्) सम्पूर्ण। (तत्) तिस शरीरादिको। (न-इति) नहीं है। (इति) इसप्रकारके। (वाक्यैः) वाक्योंके द्वारा। (निषिध्य) सर्वथा त्यागकर। (परात्मानम्) परमात्माके स्वरूपको। (ज्ञात्वा) जानकर। (अथ) अनन्तर। (क्रियाः) कर्म्मोंको। (त्यजेत्) त्याग देय ॥ १७ ॥

भा०—जबतक प्राणी अज्ञानके कारण शरीर इन्द्रिय आदि अनात्म (जड़) वस्तुओंके विषे आत्मबुद्धि करता है, अर्थात् मैं कर्त्ता हूं भोगता हूं इत्यादि बुद्धि करता है, तबतक ही प्राणीको "यजेत-यज्ञ करे" इत्यादि कर्म्मबोधक वैदिक वाक्योंका दास बनकर, आज्ञा पालन करनी पड़ती है, और जब अहङ्कार दूर हो जाता है तब सम्पूर्ण कर्म्म छूट जाते हैं, इसकारण पुरुष "नेति नेति—यह जगत् सत्य नहीं है; सत्य नहीं है" इत्यादि वेदवाक्योंके द्वारा सम्पूर्ण जगत् मिथ्या है ऐसा निश्चय करके परमात्मा ही जगत्में सर्वथा सत्यस्वरूप है ऐसा जानै, और इसप्रकार ज्ञान होनेके अनन्तर कर्म्मोंको त्याग देय ॥ १७ ॥

यदा परात्मात्मविभेदभेदकं
विज्ञानमात्मन्यवभाति भास्वरम्।
तदैव माया प्रविलीयतेऽञ्जसा
सकारका कारणमात्मसंसृतेः ॥ १८ ॥

पद०—यदा, परात्मात्मविभेदभेदकम्, विज्ञानम्, आत्मनि, अवभाति, भास्वरम्, तदा, एव, माया, प्रविलीयते, अञ्जसा, सकारका, कारणम्, आत्मसंसृतेः ॥ १८ ॥

अ० प०-(यदा) जब । (परात्मात्मविभेदभेदकम्) परमात्मा और जीवात्माके भेदको दूर करनेवाला । (भास्वरम्) प्रकाशस्वरूप । (विज्ञानम्) ब्रह्माकार अन्तःकरणकी वृत्ति । (आत्मनि) आत्माके विषे । (अवभाति) स्फुरित होती है । (तदा) तिस समय । (एव) ही । (सकारका) साङ्गोपाङ्ग । (आत्मसंसृतेः) आत्माको संसारकी प्राप्ति होनेका । (कारणम्) कारण । (माया) अविद्या । (अञ्जसा) तत्काल । (प्रविलीयते) लीन होजाती है ॥१८॥

भा०-एक आत्माके ही जीव और ईश्वर ये दो भेद, दोनोंकी भिन्न उपाधिके कारण हुए हैं. ईश्वरकी उपाधि माया और जीवकी उपाधि अन्तःकरण है. अब उपाधि क्या वस्तु है सो दृष्टान्तके द्वारा दिखाते हैं कि-जिसप्रकार एक बड़े तालावका जल गूलके द्वारा वृक्षोंकी जड़के थांवलोंमें जाकर भर जाता है, इस दृष्टान्तमें तालावमेंके जलको ईश्वरका दृष्टान्त और वृक्षोंकी जड़के जलको जीवका दृष्टान्त जानना चाहिये. जिसप्रकार तालाव और वृक्षकी जड़का थांवला इन दोनो स्थानोंका जल एकही होता है तिसी प्रकार आत्मरूपकरके जीव और ईश्वर भी एक ही है, तालावके जलकी चारों ओरका घेरारूप बन्धन और ईश्वरकी माया उपाधि है, और वृक्षके जलकी थांवला और जीवकी अन्तःकरण उपाधि है, परमात्मा और जीवके भेदका नाश आत्मतत्त्वके ज्ञानसे होता है, प्रकाशरूप आत्मतत्त्वका अन्तःकरणके विषे स्फुरण होते ही अविद्या अपनी सामग्रीसहित अर्थात् अन्य जन्म देनेवाले कर्म्मोंकरके सहित नष्ट होजाती है. आत्माका संसारबन्धनमें पड़नेका कारण यह अविद्या ही होती है ॥ १८ ॥

श्रुतिप्रमाणाभिविनाशिता च सा
कथं भविष्यत्यपि कार्यकारिणी ।
विज्ञानमात्रादमलाद्वितीयत-
स्तस्मादविद्या न पुनर्भविष्यति ॥ १९ ॥

पद०-श्रुतिप्रमाणाभिविनाशिता, च, सा, कथम्, भविष्यति, अपि, कार्यकारिणी, विज्ञानमात्रात्, अमलाद्वितीयतः, तस्मात्, अविद्या, न, पुनः, भविष्यति ॥ १९ ॥

अ० प०-(श्रुतिप्रमाणाभिविनाशिता)वेदवाक्योंके प्रमाणसे उत्पन्न हुए ज्ञानके द्वारा नष्ट होनेवाली। (सा) वह अविद्या। (च) भी। (कथम्) किसीप्रकारसे। (अपि) भी। (कार्य्यकारिणी) कार्य्य करनेवाली। (भविष्यति ?) होगी ?। (यतः+) क्योंकि। (अविद्या)। अविद्या। (अमलाद्वितीयतः) शुद्ध और अद्वितीय। (विज्ञानमात्रात्) तत्त्वज्ञानमात्रसे। (नष्टा +) नष्ट हुई है। (तस्मात्) तिसकारण। (पुनः) फिर। (न) नहीं। (भविष्यति) होगी ॥ १९ ॥

भा०-"तत्त्वमसि-वह ब्रह्म तू है" इत्यादि महावाक्योंके आधारसे उत्पन्न हुए ज्ञानसे नष्ट होकर, अविद्या क्या फिर किसी रीतिसे अपने कार्य्य (मोह, संसार)को करसकैगी ? अर्थात् कदापि नहीं करसकैगी. रज्जुमें सर्पका भ्रम होनेसे भय होता है, परन्तु जब 'रज्जु है, सर्प नहीं है' ऐसा पूर्ण ज्ञान होजाता है, तब प्राणीको रज्जुमें 'सर्प' है ऐसी फिर प्रतीति होकर भय नहीं होता है. तिसी प्रकार जिस पदार्थके विषे शुद्ध और

अद्वितीय केवल आत्मतत्त्वके द्वारा अविद्याका नाश होजाता है, उस पदार्थके विषे वह अविद्या फिर उत्पन्न नहीं होती है ॥ १९ ॥

यदि स्म नष्टा न पुनः प्रसूयते
कर्त्ताहमस्येति मतिः कथं भवेत्।
तस्मात्स्वतन्त्रा न किमप्यपेक्षते
विद्या विमोक्षाय विभाति केवला॥२०॥

पद०-यदि, स्म, नष्टा, न, पुनः, प्रसूयते, कर्त्ता, अहम्, अस्य, इति, मतिः, कथम्, भवेत्, तस्मात्, स्वतन्त्रा, न, किम्, अपि, अपेक्षते, विद्या, विमोक्षाय, विभाति, केवला ॥ २० ॥

अ०प०-(यदि) जो। (अविद्या) अविद्या । (नष्टा स्म) नष्ट होकर । (पुनः) फिर । (न) नहीं । (प्रसूयते) उत्पन्न होती है । (तदा+) तो । (अहम्) मैं । (अस्य) इस कार्यका । (कर्त्ता) करनेवाला हूं । (इति) इसप्रकार । मतिः) बुद्धि । (कथम्) किस प्रकार । (भवेत्) होगी? । (तस्मात्) तिसकारण । (स्वतन्त्रा) स्वाधीन । (विद्या) ज्ञान । (किम्-अपि) कुछ-भी । (न) नहीं । (अपेक्षते) इच्छा करता है । (विमोक्षाय) मोक्षके अर्थ । (केवला) केवल । (विभाति) शोभायमान होता है ॥ २० ॥

भा०-पुरुषको 'मैं कर्म्म करता हूँ' ऐसा अहंकार होनेका कारण अविद्या है, यदि वह अविद्या ही नष्ट होजाय और फिर उत्पन्न नहीं होय तो पुरुषको 'मैं अमुक अमुक कर्म्म करनेवाला हूं यह बुद्धि क्या हो सकती है ? अर्थात् फिर ऐसी बुद्धि कदापि नहीं होती है, इस कारण ही कहते हैं कि ज्ञानको पूर्ण स्वतन्त्रता

है, और किसीकी सहायताकी अपेक्षा नहीं है, वह ज्ञान अकेला ही मोक्षके देनेमें शोभायमान होता है ॥ २० ॥

सा तैत्तिरीयश्रुतिराह सादरं
न्यासं प्रशस्ताखिलकर्मणां स्फुटम् ।
एतावदित्याह च वाजिनां श्रुति-
र्ज्ञानं विमोक्षाय न कर्म साधनम्॥२१॥

पद०—सा, तैत्तिरीयश्रुतिः, आह, सादरम्, न्यासम्, प्रशस्ताखिलकर्मणाम्, स्फुटम्, एतावत्, इति, आह, च, वाजिनाम्, श्रुतिः, ज्ञानम्, विमोक्षाय, न, कर्म, साधनम् ॥ २१ ॥

अ० प०—(सा) वह प्रसिद्ध । (तैत्तिरीयश्रुतिः) तैत्तिरीयशाखाकी श्रुति । (प्रशस्ताखिलकर्मणाम्) प्रशंसा करे हुए सम्पूर्ण कर्म्मोंके । (न्यासम्) त्यागको । (सादरम्) आदरपूर्वक । (यथा स्यात् तथा+) जैसे हो वैसे । (स्फुटम्) स्पष्ट । (आह) कहती है । (वाजिनाम्) वाजसनेयी शाखाकी । श्रुतिः ।(श्रुति)(एतावत्) इतना । (इति च) और यह भी । (आह) कहती है । (ज्ञानम्) । ज्ञान (विमोक्षाय) मोक्षके अर्थ । (साधनम्) साधन । (भवति+) होता है । (कर्म्म) कर्म्म । (न) नहीं होता है ॥ २१ ॥

भा०—वेदोंके विषे कर्म्मकी अथवा देवताकी स्तुति अथवा निन्दा करनेवाली जो एक प्रकारकी श्रुतियां हैं उनको 'अर्थवाद' कहते हैं, तिन अर्थवाद वेदवाक्योंकरके कर्म्मकी अत्यन्त प्रशंसा करी है, तथापि तिन सम्पूर्ण कर्मोंका त्याग करना चाहिये यह विषय **"न कर्म्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः"**—कर्म्मकरके, सन्तानकरके, तथा द्रव्यकरके

भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता है, केवल विषयसंसर्गके त्यागसे मोक्षकी प्राप्ति होती है" इस तैत्तिरीय शाखाकी श्रुतिने स्पष्ट वर्णन करा है, और वाजसनेयी शाखाकी "एतावदरे खल्वमृतत्वम्" इत्यादि श्रुति भी मोक्षका साधन ज्ञानही होता है, कर्म्म नहीं इस प्रकार वर्णन करती है ॥ २१ ॥

विद्यासमत्वेन तु दर्शितस्त्वया
क्रतुर्न दृष्टान्त उदाहृतः समः।
फलैः पृथक्त्वाद्बहुकारकैः क्रतुः
संसाध्यते ज्ञानमतो विपर्ययम् ॥२२॥

पद०–विद्यासमत्वेन, दर्शितः, त्वया, क्रतुः, न दृष्टान्तः, उदाहृतः, समः, फलैः, पृथक्त्वात्, बहुकारकैः, क्रतुः, संसाध्यते, ज्ञानम्, अतः, विपर्ययम् ॥ २२ ॥

(हे समुच्चयवादिन्+) भो समुच्चयमतावलम्बिन्! । (त्वया) तूने । (क्रतुः) यज्ञ । (विद्यासमत्वेन) ज्ञानकी तुल्यता करके । (दर्शितः) दिखाया । (तु) परन्तु । (समः) समान । (दृष्टान्तः) दृष्टान्त । (न) नहीं । (उदाहृतः) कहा । (फलैः) फलोंके । (पृथक्त्वात्) भिन्न भिन्न होनेसे (बहुकारकैः) अनेक साधनोंकरके । (क्रतुः) यज्ञ । (संसाध्यते) पूर्ण किया जाता है । (ज्ञानम्) ज्ञान । (तु+) तो । (अतः) इससे । (विपर्य्ययम्) उलटा है ॥२२॥

भा०–हे समुच्चयवादिन्! तूने यज्ञको ज्ञानकी समान कहा परन्तु उसका एकसा साधक दृष्टांत नहीं दिखाया, क्योंकि यज्ञोंके फल अनेक प्रकारके होते हैं, इसकारण तिन यज्ञोंकी सिद्धता देश, काल, प्रयाज, अनुयाज, आदि अनेक अङ्गोंके द्वारा भिन्न भिन्न रीतिसे करनी पड़ती हैं, और ज्ञान तो इस कर्म्मसे

सर्वथा विपरीत है, इस कारण ज्ञानकी और यज्ञकी समता बिलकुल नहीं है ॥ २२ ॥

सप्रत्यवायो ह्यहमित्यनात्मधी-
रज्ञप्रसिद्धा न तु तत्त्वदर्शिनः ।
तस्माद्बुधैस्त्याज्यमपि क्रियात्मभि-
र्विधानतः कर्म विधिप्रकाशितम् ॥२३॥

पद०—सप्रत्यवायः, हि, अहम्, इति, अनात्मधीः, अज्ञप्रसिद्धा, न, तु, तत्त्वदर्शिनः, तस्मात्, बुधैः, त्याज्यम्, अपि, क्रियात्मभिः, विधानतः, कर्म, विधिप्रकाशितम् ॥ २३ ॥

अ० प०—'(अहम्) मैं । (सप्रत्यवायः) प्रत्यवाययुक्त हूँ ।' (इति) इस प्रकार । (अनात्मधीः) जडधर्म्मका आरोप । (अज्ञप्रसिद्धा) अज्ञानीको होता है ऐसा प्रसिद्ध है । (तत्त्वदर्शिनः) तत्त्वज्ञानीको । (तु) तो । (न) नहीं । (तस्मात्) तिसकारण । (क्रियात्मभिः) कर्म्ममार्गके विषे लगा है चित्त जिनका ऐसे । (बुधैः) विचारवान् पुरुषोंको । (विधानतः) युक्तिसे । (विधिप्रकाशितम्) विधिवाक्योंकरके प्रकाशित करा । (अपि) भी । (कर्म्म) कर्म्म । (त्याज्यम्) त्याग देना चाहिये ॥ २३ ॥

भा०—'कर्म्मानुष्ठानको त्याग दूंगा तो मुझे दोष लगैगा' यह जड़का धर्म्म उसको प्रतीत होता है, जिसके तत्त्वज्ञान नहीं होता. तत्त्वज्ञानीको ऐसी प्रतीति कदापि नहीं होती, क्योंकि तत्त्वज्ञानीको कर्तृत्वका अभिमान नहीं होता है और पापादिक धर्म्म अनात्मा (जड़) कहते हैं ऐसा तत्त्वज्ञानीको निश्चय होता है. कर्म्म अमुक प्रकारसे करै, और अवश्य करना चाहिये, यद्यपि ऐसी

वैदिक विधि अर्थात् वेदकी आज्ञा है, परन्तु यह आज्ञा उसके अर्थ है जिसके अन्तःकरणमें कर्म्मके फल जो स्वर्गादिक तिनकी प्राप्तिकी इच्छा होय, और तत्त्वज्ञानीके अर्थ यह आज्ञा नहीं है, इसकारण विवेकी पुरुषको सर्वथा कर्म्मोंका त्याग करना चाहिये ॥ २३ ॥

श्रद्धान्वितस्तत्त्वमसीति वाक्यतो
गुरोः प्रसादादपि शुद्धमानसः ।
विज्ञाय चैकात्म्यमथात्मजीवयोः
सुखी भवेन्मेरुरिवाप्रकम्पनः ॥ २४ ॥

पद०-श्रद्धान्वितः, तत्त्वमसि, इति, वाक्यतः, गुरोः, प्रसादात्, अपि, शुद्धमानसः, विज्ञाय, च, ऐकात्म्यम्, अथ, आत्मजीवयोः, सुखी, भवेत्, मेरुरिव, अप्रकम्पनः ॥ २४ ॥

अ० प०-(अथ) अनन्तर । (श्रद्धान्वितः) विश्वासयुक्त । (शुद्धमानसः) स्वच्छ मनवाला । (अपि) भी । (गुरोः) गुरुके । (प्रसादात्) अनुग्रहसे । (तत्त्वमसि) वह तू है । (इति) इस । (वाक्यतः) महावाक्यसे । (आत्मजीवयोः) परमात्मा और जीवात्माकी । (ऐकात्म्यम्) एकरूपताको । (विज्ञाय) जानकर । (अपि) ही । (मेरुरिव) मेरुसरीखा । (अप्रकम्पनः) निश्चल । (सन्+) होकर । (सुखी) आनन्दयुक्त । (भवेत्) होय ॥ २४ ॥

भा०-जिसको ज्ञानकी इच्छा हुई और जिसका गुरु तथा वेदान्तवाक्योंपर विश्वास हुआ, उसका अन्तःकरण शुद्ध तो हो जाता है, परन्तु उस पुरुषको और भी निष्काम कर्म्म करके चित्त पूर्ण रीतिसे शुद्ध करना चाहिये. तदनन्तर गुरुको प्रसन्न कर, उनके

मुखसे श्रवण करेहुए (तत्त्वमसि) इस महावाक्यके द्वारा जीवात्मा और परमात्मकी एकताके विषयमें मनन और निदिध्यासन करके अनुभव करै. इस ज्ञानका साक्षात्कार होनेसे सम्पूर्ण दुःख दूर हो जाते हैं, और परमानन्दकी प्राप्ति होती है, फिर उस पुरुषकी स्थिति मेरुपर्वतके समान अत्यन्त स्थिर हो जाती है अर्थात् उसका अन्तःकरण विषयइच्छासे कदापि मलिन नहीं होता है ॥ २४ ॥

आदौ पदार्थावगतिर्हि कारणं
वाक्यार्थविज्ञानविधौ विधानतः ।
तत्त्वंपदार्थौ परमात्मजीवका-
वसीति चैकात्म्यमथानयोर्भवेत् ॥२५॥

पद०—आदौ, पदार्थावगतिः, हि, कारणम्, वाक्यार्थविज्ञानविधौ, विधानतः, तत्त्वंपदार्थौ, परमात्मजीवकौ, असि, इति, च, ऐकात्म्यम्, अथ, अनयोः, भवेत् ॥ २५ ॥

अ० प०—(आदौ) प्रथम । (विधानतः) विधिपूर्वक । (वाक्यार्थविज्ञानविधौ) महावाक्यका अर्थबोध होनेमें । (पदार्थावगतिः) पदोंके अर्थका जानना । (कारणम्) कारण है । (हि) यह प्रसिद्ध है । (अथ) अनन्तर। (तत्त्वंपदार्थौ) तत् और त्वम् इन दोनो पदोंके अर्थ । (परमात्मजीवकौ) परमात्मा और जीव । (अथ) और । (असि-इति-च) 'असि-है' इस पदमें । (अनयोः) इन दोनोकी । (ऐकात्म्यम्) एकता । (भवेत्) होती है ॥ २५ ॥

भा०—श्रीरामचन्द्रजी बोले कि हे लक्ष्मण! अब हम तुम्हारे अर्थ "तत्त्वमसि" इस महावाक्यका अर्थ वर्णन करते हैं, निःसं-

देह वाक्यार्थ जाननेके निमित्त प्रथम उस वाक्यमेंके पदोंका अर्थ जानना चाहिये, सो "तत्त्वमसि" इस महावाक्यमें तत् और त्वम् इन दोनो पदोंका अर्थ परमात्मा और जीवात्मा है, और 'असि' यह पद तिन दोंनोकी एकता है, इस प्रकार वर्णन करते हैं ॥ २५ ॥

प्रत्यक्परोक्षादिविरोधमात्मनो-
र्विहाय सङ्गृह्य तयोश्चिदात्मताम्।
संशोधितां लक्षणया च लक्षितां
ज्ञात्वा स्वमात्मानमथाऽद्वयो भवेत् २६

पद०—प्रत्यक्परोक्षादिविरोधम्, आत्मनः,विहाय, सङ्गृह्य, तयोः, चिदात्मताम्, संशोधिताम्, लक्षणया, च, लक्षिताम्, ज्ञात्वा, स्वम्, आत्मानम्, अथ, अद्वयः, भवेत् ॥ २६ ॥

अ० प०—(आत्मनोः) जीवात्मा और परमात्माके। (प्रत्यक्परोक्षादिविरोधम्) प्रत्यक् और परोक्ष आदि विरोधको। (विहाय) त्यागकर। (संशोधिताम्) युक्तियोंके द्वारा भली प्रकार विचार करी हुई। (लक्षणया) लक्षणाकरके। (च) भी। (लक्षिताम्) दिखाईहुई। (तयोः) तिन दोनोंकी। (चिदात्मताम्) चैतन्यरूपताको। (सङ्गृह्य) ग्रहण करके। (स्वम्) अपनेको। (आत्मानम्) आत्मस्वरूप। (ज्ञात्वा) जानकर। (अथ) अनन्तर। (अद्वयः) भेदरहित अद्वितीय। (भवेत्) होय ॥ २६ ॥

भा०—ऊपर कहे हुए विषयमें शङ्का होती है कि ईश्वर तो सर्वज्ञ है, और जीव किञ्चिज्ज्ञ अर्थात् परिच्छिन्न ज्ञानवाला है. फिर इन दोनोंकी एकता किसप्रकार होसकेगी? तहां कहते हैं कि

जीवके विषे "अहंबुद्धिवेद्यत्व अर्थात् (मैं) इस बुद्धिकरके जानने-के योग्य" यह धर्म्म है अर्थात् 'प्रत्यक्त्व' धर्म्म है, और ईश्वरके विषे अपरोक्षत्व (जो किसीके देखनेमें न आवै) धर्म्म है इन भिन्न भिन्न धर्म्मोंके कारण ही जीवात्माका परमात्मासे विरोध है, इस विरोधका त्याग करके जीवात्मा और परमात्माके विषयमें उत्तम रीतिसे विचार करै, 'तत्' और त्वम्, इन दोनों पदोंका आगेके श्लोकके कथनानुसार लक्षणाकरके प्राप्त हुए अर्थको ग्रहण करके वह जीव और ईश्वर दोनों चैतन्यरूप करके एक ही होते हैं, अर्थात् 'तत्' और 'त्वम्' इन दोनों पदोंका वास्तविक अर्थ होते हैं, ऐसा जानै, फिर अपने आत्माको चैतन्यस्वरूप है ऐसा जानकर और चिद्रूपके विषे लीन करके अद्वितीय हो जाय, अर्थात् वास्तवमें जीवात्मा और परमात्मा दोनों आत्मरूप करके एक हैं, परन्तु जिसप्रकार कोई पुरुष मणिको कण्ठमें धारण करके भूलजाय और सर्वत्र ढूंढ़ता फिरै और जब कोई अन्य पुरुष बतावै तो उसका स्मरण होता है, वास्तवमें वह मणि कहीं खो नहीं जाता है, इसी प्रकार जबतक अज्ञान रहता है तबतक 'जीवात्मा परमात्मासे भिन्न है' ऐसी प्रतीति होती है, और जब 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्योंके द्वारा तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है तब ईश्वरके रूपमें मिलकर अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप ही हो जाता है ॥२६॥

एकात्मकत्वाज्जहती न सम्भवेत्
तथाऽजहल्लक्षणता विरोधतः ।
सोऽयं पदार्थाविव भागलक्षणा
युज्येत तत्त्वंपदयोरदोषतः ॥ २७ ॥

पद०-एकात्मकत्वात्, जहती, न, सम्भवेत्, तथा, अजहल्लक्षणता, विरोधतः, सोऽयंपदार्थाविव,

भागलक्षणा, युज्येत, तत्त्वंपदयोः, अदोषतः ॥ २७ ॥

अ० प०–(एकात्मकत्वात्) एक स्वरूप होनेके कारण। (जहती) जहत्स्वार्थलक्षणा । (तथा) तिसीप्रकार। (विरोधतः) विरोध होनेके कारण । (अजहल्लक्षणता) अजहल्लक्षणा । (च+) भी । (न) नहीं । (सम्भवेत्) हो सकती । (सोऽयंपदार्थौ-इव) सः-अयम् इन दोनो पदोंके अर्थकी-समान। (तत्त्वंपदयोः) तत् और त्वम् पदकी । (भागलक्षणा) भागत्यागलक्षणा । (अदोषतः) निर्दोष होनेके कारण । (युज्येत) हो सकती है ॥ २७ ॥

भा०—अव लक्षणाका वर्णन करते हैं. तहाँ लक्षणा तीन प्रकारकी होती हैं, एक जहत्स्वार्थलक्षणा १ दूसरी अजहत्स्वार्थलक्षणा २ तीसरी जहद्जहत्स्वार्थलक्षणा ३—जिसमें शब्दका मूल अर्थ छोड़ा जाय अर्थात् मुख्य अर्थका सम्भव न होनेके कारण छोड़कर उस अर्थके समीपको दूसरा सम्भव अर्थ जहाँ स्वीकार करा-जाय उसको जहत्स्वार्थलक्षणा कहते हैं, जैसे **"गङ्गायां घोषः"**—गङ्गामे गोपालोंका ग्राम है" इस वाक्यमें **'गङ्गायाम्'** इस शब्दका मुख्य अर्थ 'गङ्गाके प्रवाहमें' ऐसा है, परन्तु गङ्गाके प्रवाहमें घोष नहीं होसकता, इसकारण **'गङ्गायाम्'** इस शब्दके 'गङ्गाप्रवाह-रूप' मुख्य अर्थका त्याग करके गङ्गाके तीरपर, ऐसा अर्थ मान-नेसे **'गङ्गायां घोषः'** यह व्यवहार होसकता है, इसका ही नाम जहत्स्वार्थलक्षणा है । जहाँ मुख्य अर्थका त्याग न हो और मुख्य अर्थके समीपका अन्य अर्थ भी ग्रहण करा जाय वहाँ 'अ-जहत्स्वार्थलक्षणा' होती है, जैसे **"काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्**—काकोंसे दधिकी रक्षा करो" इस वाक्यमें **'काकेभ्यः'** इस पदका मुख्य अर्थ 'काकोंसे' यह है सो यह तो छूटा नहीं और

सम्भव होनेके कारण मार्जार (बिल्ली), कुत्ता आदि जो कोई दधिके भक्षण करनेवाले हैं तिनसे ऐसा अर्थ ग्रहण किया जाता है, इसप्रकार **"काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्**-इस वाक्यका अर्थ काक-मार्जार-कुत्ता आदि जो कोई दधि भक्षण करें उनको हटाकर दधिकी रक्षा करो" ऐसा ग्रहण करके व्यवहार चलता है। जहाँ कुछ मुख्य अर्थ छूटै और कुछ न छूटै तहाँ 'जहदजहत्स्वार्थलक्षणा' होती है, इसीको भागत्यागलक्षणा भी कहते हैं, जैसे-**"सोयं देवदत्तः**-सः कहिये दशवर्षपहिले जिसे काशीमें देखा था वही अयम्-कहिये यह देवदत्त है" दशवर्ष पहिले देवदत्त छोटी अवस्थाका था और उसके दाढ़ी मूछें नहीं थीं, और इस समय तो देवदत्तका स्वरूप बिलकुल बदल गया है, परन्तु पहिंचान पड़ता है, यह किसप्रकार हुआ, तहाँ कहते हैं कि मनुष्य देवदत्तके दशवर्ष पहिलेके छोटे आकारको और इस युवावस्थाके समयके दाढ़ीमूछोंयुक्त आकारको त्यागकर देवदत्तमात्रका ग्रहण होता है, इसप्रकार सः (पहिलेका) और अयम् (अबका) इन दोनो पदोंके कुछ मुख्य अर्थको त्याग कर पहिंचाननेका व्यवहार होता है, इसीप्रकार **"तत्त्वमसि"** इस महावाक्यके विषे "तत् वह माया है उपाधि जिसकी ऐसा चैतन्य अर्थात् ईश्वर" "त्वम्-तू-अन्तःकरण है उपाधि जिसकी ऐसा चैतन्य अर्थात् जीव" इन दोनों पदोंमें दोनोंकी एकता होनेकी शक्ति नहीं है, इसकारण लक्षणा करनी चाहिये, परन्तु कौनसी लक्षणा करनी चाहिये? तहाँ कहते हैं कि 'जहत्स्वार्थलक्षणा तो हो नहीं सकती क्योंकि इस जहत्स्वार्थलक्षणामें पदोंके सम्पूर्ण मुख्य अर्थका त्याग होता है, और 'तत्त्वम्' इन दोनों पदोंके सम्पूर्ण मुख्य अर्थका त्याग हो नहीं सकता, क्योंकि दोनों पदोंका चैतन्यरूप अर्थ एक है, इसकारण दोनों पदोंका चैतन्यरूप अपना मुख्य अर्थ अवश्य ग्रहण

करना पड़ैगा, और अजहत्स्वार्थलक्षणा भी नहीं होसकती, क्योंकि उसमें विरोध आता है. देखो, इस अजहत्स्वार्थलक्षणाके विषे बाहरका अर्थ ग्रहण किया जाता है और अपने मुख्य अर्थका त्याग नहीं होता है, और "तत्त्वमसि" वाक्यमें तो तत् और त्वम् दोनो पदोंके 'चैतन्य' मात्र अर्थको ग्रहण करके बाकी अर्थका त्याग किया जाता है। शेष रही जहदजहल्लक्षणा कहिये 'भागत्यागलक्षणा' यह लक्षणा करना ही यहाँ योग्य होता है, इस लक्षणाके करनेसे कोई दोष नहीं आता है, जैसे-"**सोऽयं-देवदत्तः**" यहाँ देवदत्तका दशवर्ष पहिलेका छोटा आकार, और इस समयका दाढीमूछयुक्त दीर्घ आकार, इन दोनो धर्म्मोंको छोड़कर, देवदत्तका सामान्य उसके मुखपर चेचकके दागआदि अर्थ ग्रहण किया जाता है इसकारण भागत्यागलक्षणा होती है, इसीप्रकार '**तत्त्वमसि**' इस महावाक्यके विषे, 'तत्' और 'त्वम्' इन दोनो पदोंका क्रमसे 'माया है उपाधि जिसकी और अन्तःकरण है उपाधि जिसकी' इस अर्थको छोड़कर बाकी रहा 'चैतन्य' रूप अर्थ ग्रहण किया जाता है, और आगेके श्लोकमें कही हुई रीतिके अनुसार 'असि' इस पदसे उन दोनोंकी एकता जानी जाती है ॥ २७ ॥

रसादिपञ्चीकृतभूतसम्भवं
भोगालयं दुःखसुखादिकर्मणाम् ।
शरीरमाद्यन्तवदादिकर्मजं
मायामयं स्थूलमुपाधिमात्मनः ॥२८॥

पद०-रसादिपञ्चीकृतभूतसंभवम्, भोगालयम्, दुःखसुखादिकर्मणाम्, शरीरम्, आद्यन्तवत्,

आदिकर्मजम्, मायामयम्, स्थूलम्, उपाधिम्, आत्मनः ॥ २८ ॥

अ० प०–(रसादिपञ्चीकृतभूतसम्भवम्) पञ्चीकरण करेहुए पंचभूतसे अर्थात् इकट्ठे करेहुए पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूतसे उत्पन्न होनेवाले। (दुखःसुखादिकर्मणाम्) सुख और दुःख उत्पन्न करनेवाले जो कर्म तिनके। (भोगालयम्) भोगके स्थान। (आद्यन्तवत्) उत्पत्ति और नाश जिसका होता है ऐसे। (आदिकर्मजम्) पूर्वजन्मके कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले। (मायामयम्) मायाके कार्य्य। (शरीरम्) शरीरको। (आत्मनः) आत्माकी। (स्थूलम्) स्थूल। (उपाधिम्) उपाधि। (विदुः) जानते हैं ॥२८॥

भा०–जीवकी जो उपाधि कहिये 'आधीयते दुःखमनेन इति आधिः। आधेः उप-उपाधिः' अर्थात् चिन्ताकी समीपस्थ (उपाधि) है उसका त्याग करना चाहिये, वह उपाधि क्या पदार्थ है सो कहते हैं कि-पञ्चमहाभूतोंमें प्रत्येक महाभूतके दो दो भाग करै उनमेंसे एक एक भाग जैसाका तैसा रहने देय और दूसरे भागके चार चार भाग करै, इस आधेके चौथे भाग अर्थात् एक महाभूतका अष्टमांश जानै, अपने भागके शिवाय अन्य चार महाभूतोंके अष्टमांशको ग्रहण करके अपने अर्द्धभागमें मिलाकर एक गोल तयार होता है, यह अपना शरीर जिसमें पृथ्वीका भाग अर्द्ध है ऐसे मिश्रित पिण्डसे बना है, अर्थात् अपने शरीरोंमें आधा अंश पृथ्वीका और अष्टमांश जलका, अष्टमांश तेजका, अष्टमांश वायुका, और अष्टमांश आकाशका है, जिसमें जलका आधा अंश और शेषभूतोंमेंसे प्रत्येक भूतका अष्टमांश होता है ऐसे मिश्रित पिण्डसे उत्पन्न हुए शरीर वरुणलोकमें होते हैं, और जिसमें तेजका भाग आधा हो और शेषभूतोंमेंसे प्रत्येक भूतका

अष्टमांश हो ऐसे मिश्रित पिण्डसे उत्पन्नहुए शरीर सूर्य्यलोकमें होते हैं। इसका ही नाम पञ्चीकरण है। और पञ्चीकरण करेहुए पञ्चमहाभूतके सकाशसे पूर्वजन्ममें करेहुए कर्म्मोंके अनुसार सुखदुःख भोगनेके स्थानरूप इस स्थूलशरीरकी उत्पत्ति होती है, इस स्थूल शरीरका जन्म और नाश होता है, और परम्पराकरके अर्थात् मायासे महत्तत्त्व-महत्तत्त्वसे अहङ्कार-अहङ्कारसे पञ्चमहाभूत और पञ्चमहाभूतसे शरीर, इस क्रमसे यह शरीर मायाका कार्य्य है, और आत्माकी प्रथम उपाधिरूप है ॥ २८ ॥

सूक्ष्मं मनोबुद्धिदशेन्द्रियैर्युतं
प्राणैरपञ्चीकृतभूतसम्भवम् ।
भोक्तुः सुखादेरनुसाधनं भवे-
च्छरीरमन्यद्विदुरात्मनो बुधाः ॥ २९ ॥

पद०—सूक्ष्मम्, मनोबुद्धिदशेन्द्रियैः, युतम्, प्राणैः, अपञ्चीकृतभूतसम्भवम्, भोक्तुः, सुखादेः, अनुसाधनम्, भवेत्, शरीरम्, अन्यत्, विदुः, आत्मनः, बुधाः ॥ २९ ॥

अ० प०—(बुधाः) विचारवान् पुरुष । (मनोबुद्धिदशेन्द्रियैः) मन-बुद्धि और दश इन्द्रियोंकरके । (प्राणैः) प्राणोंकरके । (च+) भी । (युतम्) युक्त । (अपञ्चीकृतभूतसम्भवम्) पञ्चीकरण नहीं करे हुए पञ्चभूतसे उत्पन्न होनेवाले (अन्यत्) दूसरे । (शरीरम्) शरीरको । (आत्मनः) आत्माकी । (सूक्ष्मम्) सूक्ष्म । (उपाधिम्+) उपाधि । (विदुः) जानते हैं । (एतत्+) यह शरीर । (भोक्तुः) भोगनेवालेके । (सुखादेः) सुखआदिका । (अनुसाधनम्) साधन । (भवेत्) होता है ॥ २९ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष दूसरा एक सूक्ष्म शरीर जीवकी उपाधि है ऐसा मानते हैं। इस सूक्ष्म शरीरके विषे मन-बुद्धि-दश इन्द्रिय अर्थात्-श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण, वाणी, हाथ, चरण, गुदा, और जननेन्द्रिय (लिङ्ग अथवा योनि) और पञ्चप्राण अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, उदान, और समान इतने भाग होते हैं, इसकी उत्पत्ति पञ्चीकरण न करेहुए पञ्चमहाभूतसे होती है। यह शरीर भोक्ताके सुखदुःखादिके भोगका साधन होता है—अर्थात् यह सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीरमें रहता हो तो सुख-दुःखादिकोंका भोग मिलता है, और इस सूक्ष्मशरीरके स्थूल शरीरमेंसे निकलनेसे प्राणीका मरण होता है॥ २९॥

अनाद्यनिर्वाच्यमपीह कारणं
मायाप्रधानं तु परं शरीरकम्।
उपाधिभेदात्तु यतः पृथक्स्थितं
स्वात्मानमात्मन्यवधारयेत् क्रमात् ३०॥

पद०—अनादि, अनिर्वाच्यम्, अपि, इह, कारणम्, मायाप्रधानम्, तु, परम्, शरीरकम्, उपाधिभेदात्, तु, यतः, पृथक्स्थितम्, स्वात्मानम्, आत्मनि, अवधारयेत्, क्रमात्॥ ३०॥

अ०प०—(अनादि) जन्मरहित। (अनिर्वाच्यम्) कथन करनेमें न आवै ऐसी (अपि) भी। (इह) यहाँ। (कारणम्) कारणरूप। (माया) अविद्या। (तु) तो। (परम्) उत्कृष्ट। (प्रधानम्) मुख्य। (शरीरकम्) शरीर। (अस्ति+) है। (यतः-तु) क्योंकि। (उपाधिभेदात्) उपाधिके भिन्न होनेसे। (पृथक्) भिन्न। (स्थितम्) स्थित है। (अतः+) इसकारण। (क्रमात्) क्रमसे। (स्वात्मान-

म्) अपने आत्माको । (आत्मनि) परमात्माके विषे । (अवधारयेत्) निश्चय करै ॥ ३० ॥

भा०—इस प्रकार जीवकी स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकारकी उपाधियोंका वर्णन करा. अब ईश्वरकी उपाधि कौन है ? तिसका वर्णन करतेहैं कि माया ईश्वरकी उत्तम अर्थात् जिसके कारणसे ईश्वर ऐसा व्यवहार चलता है ऐसा प्रधान शरीर, इस शरीरकी उत्पत्ति नहीं होतीहै अर्थात् यह अनादि है, परन्तु इसका नाश होताहै, अर्थात् माया अनेक रूपसे परिणामको प्राप्त होतीहै, और अन्तमें सम्पूर्ण रूपसे नष्ट होजातीहै, यह मायारूप शरीर वर्णन करनेमें नहीं आताहै, परन्तु यह सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिका कारण है, वास्तवमें आत्मा एक है,परन्तु भिन्न भिन्न उपाधिके कारण 'जीव' और ईश्वर इसप्रकार अलग अलग होरहाहै, इसकारण उन उपाधियोंका त्याग करके श्रवण, मनन, निदिध्यासन इस क्रमसे जीवात्माका परमात्मरूपके विषे अभेद है ऐसा जाने ॥३०॥

कोशेष्वयं तेषु तु तत्तदाकृति-
र्विभाति सङ्गात्स्फटिकोपलो यथा ।
असङ्गरूपोऽयमजोऽद्वयो यतो
विज्ञायतेऽस्मिन्परितो विचारिते ॥३१॥

पद०—कोशेषु, अयम्, तेषु, तु, तत्, तत्, आकृतिः, विभाति, सङ्गात्, स्फटिकोपलः, यथा, असङ्गरूपः, अयम्, अजः अद्वयः, यतः, विज्ञायते, अस्मिन्, परितः, विचारिते ॥ ३१ ॥

अ०प०—(अयम्) यह आत्मा । (तेषु) तिन । (कोशेषु) कोशोंके विषे । (तु) तौ । (यथा) जिसप्रकार । (स्फटिकोपलः) स्फटिकमणि । (तथा+) तिसप्रकार । (सङ्गात्)

सम्बन्धके कारण । (तत्तदाकृतिः) तिस तिस स्वरूपवाला । (विभाति) प्रतीत होता है । (यतः) क्योंकि । (अस्मिन्) इस विषयके । (परितः) सर्वथा । (विचारिते) विचार करनेपर । (अयम्) यह । (असङ्गरूपः) सम्बन्ध नहीं करनेवाला स्वरूप जिसका ऐसा । (अजः) जन्मरहित । (अद्वयः) अद्वितीय ब्रह्म (च+) भी । (विज्ञायते) जाना जाता है ॥ ३१ ॥

भा०—शरीरके विषे अन्नमय १, प्राणमय २, मनोमय ३, विज्ञानमय ४, और आनन्दमय. ५, यह पञ्चकोश हैं. जिसप्रकार स्फटिकमणि जपाके ऊपर रखनेसे पीले वर्णका दीखने लगताहै. तिसी प्रकार आत्मा तिन अन्नमयादि पाँचों कोशोंके सम्बन्धसे तिस तिस रूपवाला प्रतीत होनेलगताहै अर्थात् मैं स्थूल हूँ. मै कृश हूँ इत्यादि प्रतीति मनुष्यको तिन पञ्चकोशोंके सम्बन्धसेही होती है, और महावाक्यका उत्तमरीतिसे विचार करनेपर यह आत्मा पञ्चकोशके सम्बन्धरहित, जन्म नहीं ग्रहण करनेवाला और अद्वितीय है ऐसा ज्ञान हो जाता है ॥ ३१ ॥

बुद्धेस्त्रिधा वृत्तिरपीह दृश्यते
स्वप्नादिभेदेन गुणत्रयात्मनः ।
अन्योन्यतोऽस्मिन्व्यभिचारतो मृषा
नित्ये परे ब्रह्मणि केवले शिवे ॥ ३२ ॥

पद०—बुद्धेः, त्रिधा, वृत्तिः, अपि, इह, दृश्यते, स्वप्नादिभेदेन, गुणत्रयात्मनः, अन्योन्यतः, अस्मिन्, व्यभिचारतः, मृषा, नित्ये, परे, ब्रह्मणि, केवले, शिवे ॥ ३२ ॥

अ० प०—(इह) इस आत्माके विषे । (स्वप्नादिभेदेन)

स्वप्न आदिभेदके कारण । (या+) जो । (त्रिधा) तीनप्रकारकी । (वृत्तिः) अवस्था । (दृश्यते) दीखती है । (सा+) वह । (अपि) भी । (गुणत्रयात्मनः) गुणका त्रिकूट है स्वरूप जिसका ऐसी । (बुद्धेः) बुद्धिकी । (अस्ति+)है । (एतत्+) यह । (अवस्थात्रयम्+) तीनों अवस्था । (अस्मिन्) इस । (नित्ये) त्रिकालमेंभी नाशको न प्राप्त होनेवाले । (परे) त्रिगुणसे पर । (ब्रह्मणि) व्यापक । (केवले) अद्वितीय । (शिवे) आनन्दमयके विषे । (अन्योन्यतः) परस्परसे । (व्यभिचारतः) विरुद्ध होनेके कारण । (मृषा) मिथ्या कल्पित है ॥ ३२ ॥

भा०–इस आत्माके विषे स्वप्न१, जाग्रत्२, और सुषुप्ति३, यह तीनप्रकारकी अवस्था दीखनेमें आतीहैं, परन्तु वह दीखती हुई तीनप्रकारकी अवस्था बुद्धिकी हैं, आत्माकी नहीं हैं, बुद्धि सत्त्व, रज, तम, इन तीन गुणोंकी बनी है, और तीनों अवस्था क्रमसे तीनों गुणोंका कार्य्य हैं. अर्थात् स्वप्नावस्था रजोगुणका कार्य्य है, जाग्रत् अवस्था सत्त्वगुणका कार्य्य है,और सुषुप्ति अवस्था तमोगुणका कार्य्य है, तिन तीनो अवस्थाओंकी आत्माके विषे जो प्रतीति होय है सो बिलकुल मिथ्या है,क्योंकि तिन तीनो अवस्थाओंमें कोई अवस्थाभी नित्य नहीं है, देखो जब स्वप्नावस्था होय है तब जाग्रत् और सुषुप्ति अवस्थाका अभाव होयहै, और जब जाग्रत् अवस्था होयहै तब अन्य दोनो अवस्थाओंका अभाव होयहै, तथा जब सुषुप्ति अवस्था होयहै तब स्वप्न और जाग्रत् दोनों अवस्थाओंका अभाव होयहै, इसप्रकार वह तीनो अवस्था अनित्य हैं, इसकारणही इनको अनित्य अर्थात् मिथ्याकल्पित कहतेहैं, और आत्मा नित्य अर्थात् जन्ममरणरहित, तीनो गुणोंसे पर, व्यापक, असङ्ग और आनन्दस्वरूप अद्वितीय है इसप्रकार

वर्णन करेहुए आत्माके विषे अनित्य स्वप्नादि अवस्थाओंकी प्रतीति कदापि वास्तविक नहीं होसक्ती, और आत्माके विषे तिन तीनों अवस्थाओंकी प्रतीति जो होतीहै, उसका कारण केवल बुद्धिका अध्यास है ॥ ३२ ॥

देहेन्द्रियप्राणमनश्चिदात्मनां
सङ्घादजस्रं परिवर्त्तते धियः ।
वृत्तिस्तमोमूलतयाऽज्ञलक्षणा
यावद्भवेत्तावदसौ भवोद्भवः ॥ ३३ ॥

पद०–देहेन्द्रियप्राणमनश्चिदात्मनाम्, सङ्घात्, अजस्रम्, परिवर्त्तते, धियः, वृत्तिः, तमोमूलतया, अज्ञलक्षणा, यावत्, भवेत्, तावत्, असौ, भवोद्भवः ॥ ३३ ॥

अ० प०–(देहेन्द्रियप्राणमनश्चिदात्मनाम्) देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, और चिदात्मा इनके । (सङ्घात्) समूहसे । (अजस्रम्) निरन्तर । (यावत्) जवतक । (धियः) बुद्धिकी । (वृत्तिः) अवस्था । (तमोमूलतया) तमोगुण मूलकारण होनेसे । (अज्ञलक्षणा) अज्ञानकी जनानेवाली । (परिवर्त्तते) चलती रहती है। (तावत्) तवतक । (असौ) यह । (भवोद्भवः) संसारका उद्भव । (भवेत्) होता है ॥ ३३ ॥

भा०–देह, इन्द्रियां, प्राण, मन, और जीव इनमें एकका एकके ऊपर अध्यास होनेके कारण बुद्धिकी वृत्ति निरन्तर प्रवृत्त होती है, इस वृत्तिको तमोगुणका और रजोगुणका मुख्य आधार है, इस कारण तिस बुद्धिकी वृत्तिसे होनेवाले व्यापार अज्ञानके बोधक होतेहैं अर्थात् बुद्धिकी वृत्तिके व्यापार होतेही विचारवान् पुरुषको प्रतीत होजाता है कि यह अज्ञान है. वह बुद्धिकी वृत्ति

जबतक प्रवृत्त रहती तबतकही संसार होताहै; इससे यह सिद्ध हुआ कि जिसमें रज और तम इन दोनोगुणोंकी अधिकताहै, वह बुद्धिही संसारका कारणहै, इसकारण उसका सर्वथा त्याग करना चाहिये ॥ ३३ ॥

नेतिप्रमाणेन निराकृताखिलो
हृदा समास्वादितचिद्घनामृतः ।
त्यजेदशेषं जगदात्तसद्रसम्
पीत्वा यथाम्भः प्रजहाति तत्फलम् ३४

पद०–न, इति, प्रमाणेन, निराकृताखिलः, हृदा, समास्वादितचिद्घनामृतः, त्यजेत्, अशेषम्, जगत्, आत्तसद्रसम्, पीत्वा, यथा, अम्भः, प्रजहाति, तत्, फलम् ॥ ३४ ॥

अ० प०–(न, इति-प्रमाणेन,) 'न-इति' इस श्रुतिके प्रमाणसे । (निराकृताखिलः) दूर करा है सब जिसने । (हृदा) हृदय करके । (समास्वादितचिद्घनामृतः) उत्तम प्रकारसे भोगा है चैतन्य पूर्ण सुख जिसने ऐसा पुरुष । (अशेषम्) सम्पूर्ण । (जगत्) जगत्को । (यथा) जिसप्रकार । (तृषावान्+) प्यासा पुरुष । (आत्तसद्रसम्) ग्रहण करा है उत्तम रस जिससे ऐसे । (नारिकेलनारङ्गादिफलान्तर्वर्त्ति+) नारिकेल-नारङ्गी आदि फलके भीतरके । (अम्भः) जलको । (पीत्वा) पान करके । (तत्फलम्) उस अवशिष्ट छुकलारूप फलको । (प्रजहाति) त्याग देता है । (तथा+) तिसप्रकार । (त्यजेत्) त्याग देय ॥ ३४ ॥

भा०–श्रीरामचंद्रजी बोले कि हे लक्ष्मण ! महावाक्यका

विचार करनेके अनन्तर क्या करना चाहिये सो कहतेहैं. कि पुरुषको "नेति नेति अमुक वस्तु सत्य नहीं है, अमुक वस्तु सत्य नहींहै" इस श्रुतिके प्रमाणसे सम्पूर्ण जगत् मिथ्या है, ऐसा विचारना चाहिये, फिर सत्त्वगुण है अधिक जिसमें ऐसे सत्वगुणप्रधान मनके द्वारा चैतन्यरूप (ज्ञानमय) अद्वितीय (दुःखरहित) अमृत-रूपी ब्रह्मानन्दका पान करै, अर्थात् जिसप्रकार प्यासा पुरुष नारि-केल, नारङ्गी आदि फलके भीतरके सारभूत मधुर जलका पान करके छुकला आदि जो शेष वस्तु बचैहै उसको त्याग देयहै तिसी प्रकार जिसके आश्रयसे ज्ञान मिलता है तिस सम्पूर्ण दे-हइन्द्रियादि दृश्य पदार्थोंका त्याग करै, यद्यपि ब्रह्मज्ञान होनेपर त्याज्य अथवा ग्राह्य कुछ नहीं होताहै परन्तु जिससे भय प्रतीत होय उसका त्याग करदेय इस व्यवहारके अनुसार 'त्याग करै' इस सम्पूर्णकथनका तात्पर्य यह है कि उदासीन होकर रहै ॥३४॥

कदाचिदात्मा न मृतो न जायते
न क्षीयते नापि विवर्द्धतेऽनवः ।
निरस्तसर्वातिशयः सुखात्मकः
स्वयंप्रभः सर्वगतोऽयमद्वयः ॥ ३५ ॥

पद०–कदाचित्, आत्मा, न, मृतः, न, जायते, न, क्षीयते, न, अपि, विवर्द्धते, अनवः, निरस्तसर्वा-तिशयः, सुखात्मकः, स्वयंप्रभः, सर्वगतः, अयम्, अद्वयः ॥ ३५ ॥

अ०प०–(अनवः) जन्मधारण न करनेवाला । (आत्मा) आत्मा । (कदाचित्) कभी । (न) नहीं । (जायते) उत्पन्न होता है । (न) नहीं । (अपि) भी । (वर्द्धते) वृद्धिको प्राप्त होता है । (न) नहीं । (क्षीयते) क्षीण होता है । (न) न-

हीं । (मृतः) मरनेवाला है । (सुखात्मकः) सुखरूप । (निरस्तसर्वातिशयः) दूर करदिया है सम्पूर्ण महत्त्व जिसने ऐसा । (स्वयंप्रभः) स्वयंप्रकाश । (सर्वगतः) सर्वव्यापी । (च+) और । (अयम्) वह । (अद्वयः) अद्वितीय । (अपि) भी । (अस्ति+) है ॥ ३५ ॥

भा०–आत्मा कभी नवीन नहीं होताहै अर्थात् सनातन है, कभी बढता नहीं है, कभी रूपान्तरको नहीं प्राप्त होताहै, कभी क्षीण नहीं होताहै, और कभी नष्टभी नहीं होताहै, अर्थात् अस्ति१, जायते२, वर्धते३, विपरिणमते४, अपक्षीयते५, नश्यति६, इन छः भावविकारोंकरके आत्मा रहित है, अर्थात् आत्मासे अन्य सम्पूर्ण वस्तु षड्भावविकारयुक्त होनेसे अनित्य होनेके कारण त्यागने योग्य हैं, यह जीवात्मा सम्पूर्ण देहेन्द्रियादिके महत्त्वसे भिन्न है, आनन्दस्वरूप है, स्वयंप्रकाश है, सर्वव्यापीहै, और अहंबुद्धिका विषय (प्रत्यगात्मा) होकरभी अद्वितीय अर्थात् ब्रह्मस्वरूप कहिये ब्रह्मसे अभिन्न है, इस आत्माके सिवाय सम्पूर्ण पदार्थ विकारी और अनित्य हैं. इसकारण विषयोंका त्याग करना चाहिये ॥ ३५ ॥

एवंविधे ज्ञानमये सुखात्मके
कथं भवो दुःखमयः प्रतीयते ।
अज्ञानतोऽध्यासवशात्प्रकाशते
ज्ञाने विलीयेत विरोधतः क्षणात् ॥ ३६ ॥

पद०–एवंविधे, ज्ञानमये, सुखात्मके, कथम्, भवः, दुःखमयः, प्रतीयते, अज्ञानतः, अध्यासवशात्, प्रकाशते, ज्ञाने, विलीयेत, विरोधतः, क्षणात् ॥ ३६ ॥

अ० प०–(एवंविधे) इसप्रकारके। (ज्ञानमये)ज्ञानस्वरूप। (सुखात्मके) सुखस्वरूप आत्माके विषे। (दुःखमयः) दुःखरूप। (भवः) संसार। (कथम्) किस प्रकार (प्रतीयते) भासता है। (अज्ञानतः) अज्ञानसे। (अध्यासवशात्) अध्यासके कारण। (प्रकाशते) प्रतीत होता है। (ज्ञाने) ज्ञानके। (आविर्भूते–) प्रकट। (सति+) होनेपर। (विरोधतः) विरोध होनेके कारण। (क्षणात्) क्षणमात्रमें। (विलीयेत) लीन हो जाता है ॥ ३६ ॥

भा०–यहाँपर शङ्का होतीहै कि आत्मा यदि इसप्रकारका ज्ञानरूप और सुखमय है तो तिस आत्माके विषे दुःखोंका भरा-हुआ यह संसार किसप्रकार प्रतीत होताहै ? तहाँ कहतेहैं कि अज्ञानसे पुरुष आत्माके विषे देहेन्द्रियका अध्यास करतेहैं, इस कारण आत्माके विषे संसारकी प्रतीति होतीहै, तत्त्वज्ञान होतेही क्षणमात्रमें अज्ञान लीन (नष्ट) होजाता है, क्योंकि ज्ञानका और अज्ञानका पूर्ण द्वेष है अर्थात् ज्ञान और अज्ञान दोनों एकस्थानमें कदापि नहीं रहतेहैं, और अज्ञानके नष्ट होतेही अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला संसार स्वयं नष्ट होजाताहै ॥ ३६ ॥

यदन्यदन्यत्र विभाव्यते भ्रमा-
दध्यासमित्याहुरमुं विपश्चितः ।
असर्पभूतेऽहिविभावनं यथा
रज्ज्वादिके तद्वदपीश्वरे जगत् ॥ ३७ ॥

पद०–यत्, अन्यत्, अन्यत्र, विभाव्यते, भ्रमात्, अध्यासम्, इति, आहुः, अमुम्, विपश्चितः, असर्पभूते, अहिविभावनम्, यथा, रज्ज्वादिके, तद्वत्, अपि, ईश्वरे, जगत् ॥ ३७ ॥

अ० प०-(यत्) जो । (अन्यत्) अन्यवस्तु । (भ्रमात्) भ्रान्तिके कारण । (अन्यत्र) अन्य स्थानमें । (विभाव्यते) कल्पित होता है । (विपश्चितः) विद्वान् पुरुष । (अमुम्) इसको । (अध्यासम्) अध्यास । (इति) ऐसा । (आहुः) कहते हैं । (यथा) जिसप्रकार । (असर्पभूते) वस्तुतः सर्परूपसे रहित । (रज्ज्वादिके) रज्जु आदिके विषे । (अहिविभावनम्) सर्पकी कल्पना होती है ।(तद्वत्) तिसीप्रकार (ईश्वरे) ईश्वरके विषे । (अपि) भी ।(जगत्) संसार है॥३७॥

भा०-एक पदार्थकी दूसरे पदार्थके विषे भ्रान्तिसे आरोप अर्थात् मिथ्याकल्पना करनेको विद्वान् पुरुष 'अध्यास' कहतेहैं, जैसे-अन्धकारमें पड़ीहुई रज्जुके विषे भ्रमसे सर्प न होनेपरभी पुरुष सर्पका आरोप करतेहैं अर्थात् रज्जुको सर्प मानलेतेहैं,इसको विद्वान् पुरुष रज्जुमें सर्पका अध्यास कहतेहैं, इसीप्रकार अज्ञानवश ईश्वरके विषे जगत्का अध्यास मानाहै ॥ ३७ ॥

विकल्पमायारहिते चिदात्मके-
ऽहङ्कार एष प्रथमः प्रकल्पितः ।
अध्यास एवात्मनि सर्वकारणे
निरामये ब्रह्मणि केवले परे ॥ ३८ ॥

पद०-विकल्पमायारहिते, चिदात्मके, अहङ्कारः, एषः, प्रथमः, प्रकल्पितः अध्यासः, एव, आत्मनि, सर्वकारणे, निरामये, ब्रह्मणि, केवले, परे ३८

अ० प०-(विकल्पमायारहित) कल्पनाकी कारण जो माया तिसकरके रहित । (चिदात्मके) ज्ञानस्वरूप । (सर्व कारणे) सबके कारण । (निरामये) दुःखरहित।(केवले) अद्वितीय । (परे) दृश्यमान पदार्थोंसे अलग । (ब्रह्मणि)

व्यापक। (आत्मनि) आत्माके विषे। (प्रथमः) आरम्भमें। (प्रकल्पितः) कल्पना कराहुआ। (एषः) यह। (अहङ्कारः) अहङ्कार। (अध्यासः) अध्यास। (एव) ही। (अस्ति) है॥ ३८॥

भा०—सम्पूर्ण कल्पनाओंकी कारण माया आत्माके विषे वास्तविक नहीं है, ज्ञानही आत्माका स्वरूप है, वह आत्मा सर्वका कारण, दुःखरहित, आनन्दस्वरूप, सर्वप्रकारके विकारोंकरके शून्य, सम्पूर्ण दृश्यपदार्थोंसे पर और व्यापक है, तिस आत्माके विषे प्रथम अहङ्कारका आरोप हुआ है, यही अध्यास है, और अहङ्कार अर्थात् (अहंबुद्धि-मैं कर्ता-भोक्ता आदि हूं) इसप्रकार अभिमान ही संसारका कारण है॥ ३८॥

इच्छादिरागादिसुखादिधर्मिकाः
सदा धियः संसृतिहेतवः परे।
यस्मात्प्रसुप्तौ तदभावतः परः
सुखस्वरूपेण विभाव्यते हि नः॥३९॥

पद०—इच्छादिरागादिसुखादिधर्म्मिकाः, सदा, धियः, संसृतिहेतवः, परे, यस्मात्, प्रसुप्तौ, तदभावतः, परः, सुखस्वरूपेण, विभाव्यते, हि, नः॥ ३९॥

अ०प०—(परे) सर्वसाक्षी आत्माके विषे, (सदा) सर्वकालमें। (इच्छादिरागादिसुखादिधर्म्मिकाः) इच्छा आदि, प्रीति आदि, और सुखआदि हैं धर्म्म जिनके ऐसी। (धियः बुद्धियें। (एव+) ही। (संसृतिहेतवः) संसारकी कारण। (सन्ति+) हैं। (यस्मात्) क्योंकि। (ही) निश्चय है कि। (नः) हमकरके। (प्रसुप्तौ) निद्राकालमें। (तदभावतः) तिन कारणोंके न होनेसे। (परः) आत्मा। (सुखस्वरूपेण) सुखरूपकरके। (विभाव्यते) जानाजाता है ३९

भा०–संसार बुद्धिके विषे होताहै आत्माके विषे नहीं होता है इसको दिखातेहैं कि-सर्वसाक्षी आत्माके विषे जो सुखदुःखादिरूप संसारकी प्रतीति होयहै सो बुद्धिके अध्याससेही होयहै, सुख दुःख प्रीतिद्वेष इच्छा उदासीनता यह द्वन्द्व बुद्धिकेही धर्म्म हैं आत्माके नहीं हैं, क्योंकि जबतक बुद्धि रहतीहै तबतकही इच्छा उदासीनता आदि रहतेहैं, जब बुद्धिकी वृत्ति नष्ट होतीहै तब सुखदुःख आदिभी नष्ट होजातेहैं। देखो निद्रामें बुद्धिकी वृत्ति नहीं होतीहै तब-सुखदुःख प्रीति द्वेष आदि कोई धर्म्मभी नहीं होतेहैं, यदि वह सुखादि आत्माके धर्म्म होते तौ निद्रासमयमेंभी उनका अनुभव होता. आत्मा तौ निद्रासमयमें होताही है, क्योंकि शयनकरके उठनेपर"सुखमहमस्वाप्सम्-मैं सुखरूपसे सोया" इसप्रकार मनुष्य कहताहै, इससे यह मानना पड़ता है कि निद्राकालमें सुखका अनुभव करनेवाला कोई आत्मा अवश्य है ॥३९॥

अनाद्यविद्योद्भवबुद्धिबिंबितो
जीवः प्रकाशोयमितीर्यते चितः।
आत्मा धियः साक्षितया पृथक्स्थितो
बुद्ध्यापरिच्छिन्नपरः स एव हि ॥४०॥

पद०–अनाद्यविद्योद्भवबुद्धिबिंबितः, जीवः, प्रकाशः, अयम्, इति, ईर्यते, चितः, आत्मा, धियः, साक्षितया, पृथक्, स्थितः, बुद्ध्यापरिच्छिन्नपरः, सः, एव, हि ॥ ४० ॥

अ० प०–(अनाद्यविद्योद्भवबुद्धिबिम्बितः) अनादि अविद्याकरके उत्पन्न हुई बुद्धिके विषे जिसका प्रतिबिम्ब पड़ा है ऐसा। (चितः) चैतन्यका (यः+)। जो। (प्रका-

शः)प्रकाश है । (अयम्) यह । (जीवः)जीव । (इति)ऐसा (ईर्य्यते) कहा जाता है । (आत्मा) परमात्मा । (धियः) बुद्धिके । (साक्षितया) साक्षिरूपकरके । (पृथक्) अलग । (स्थितः) स्थित । (बुद्ध्यापरिच्छिन्नपरः) बुद्धिके धर्मोंसे रहित पर है । (सः+) जीव । (सः+) परमात्मा । (एव) ही । (अस्ति+) है । (हि) यह शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है ॥ ४० ॥

भा०—अनादि अविद्यासे उत्पन्न हुई बुद्धिके विषे चैतन्यके प्रकाशका जो प्रतिविम्ब पड़ताहै, उस प्रतिविम्बको 'जीव' कहते हैं, और परमात्मा बुद्धिके चरित्रोंको देखता हुआ अन्तर्यामी रूपसे अलग स्थितहै, तिस परमात्माको बुद्धि परिच्छेद (इयत्ता इतनाहै)रूपसे जान नहीं सक्ती है, अर्थात् परमात्मा अपरिच्छिन्न-रूप व्यापक है, और '**तत्त्वमसि**' इस महावाक्यसे उत्पन्नहुए ज्ञानसे प्रतिविम्बके आधार (बुद्धि)का नाश होनेपर प्रतिविम्बभी नष्ट होजाताहै, तब जीव परमात्मारूपही होताहै ॥ ४० ॥

चिद्बिम्बसाक्ष्यात्मधियां प्रसङ्गत-
स्त्वेकत्र वासादनलाक्तलोहवत् ।
अन्योन्यमध्यासवशात्प्रतीयते
जडाजडत्वं च चिदात्मचेतसोः ॥४१॥

पद०—चिद्बिम्बसाक्ष्यात्मधियाम्, प्रसंगतः, तु, एकत्र, वासात्, अनलाक्तलोहवत्, अन्योन्यम्, अध्यासवशात्, प्रतीयते, जडाजडत्वम्, च, चि-दात्मचेतसोः ॥ ४१ ॥

अ० प०—(एकत्र वासात्) एक स्थानमें स्थिति होनेसे । (अनलाक्तलोहवत्) अग्निसे तपाए हुए लोहके पिण्डकी समान । (चिद्बिम्बसाक्ष्यात्मधियाम्) चैतन्यका प्रतिविम्ब

और इन्द्रियोंसहित मन तथा अन्तःकरणके । (प्रसङ्गतः) समीप सम्बन्ध होनेके कारण । (चिदात्मचेतसोः) चैतन्य प्रतिविम्ब और अन्तःकरणकेविषे । (अन्योन्यम्) परस्पर । (अद्ध्यासवशात्) अध्यासके कारण । (जडाजडत्वम्) जडता और चेतनता । (प्रतीयते) प्रतीत होती है ॥ ४१ ॥

भा०—जिसप्रकार लोहेके गोलेको अग्निमें तपाकर लाल करनेपर अग्निका गुण जो दाहकता अर्थात् जलानेकी शक्ति है वह लोहेके गोलेमें दीखने लगतीहै, और लोहके गोलेका गुण अर्थात् गोलपना अग्निमें प्रतीत होने लगता है, क्योंकी अग्निमें तपाकर लाल करेहुए लोहेके गोलेको देखकर पुरुष 'अग्निका लाल गोला' इसप्रकार कहतेहैं; इसका कारण यह है कि लोहेका गोला और अग्नि इन दोनोंकी एकस्थानमें स्थिति होती है ! तिसीप्रकार चैतन्यका प्रतिविम्ब(जीव) और इन्द्रियोंसहित मन तथा अन्तःकरण इनका निकट सम्बन्ध होनेसे चिदात्मा और मन इन दोनोंका परस्पर अध्यास होकर, आत्माका धर्म्म चेतनपना मनके विषे और मनका धर्म्म जड़पना आत्माके विषे दीखने लगताहै ॥ ४१ ॥

गुरोः सकाशादपि वेदवाक्यतः
सञ्जातविद्यानुभवो निरीक्ष्यतं ।
स्वात्मानमात्मस्थमुपाधिवर्जितं
त्यजेदशेषं जडमात्मगोचरम् ॥ ४२ ॥

पद०—गुरोः, सकाशात्, अपि, वेदवाक्यतः, सञ्जातविद्यानुभवः, निरीक्ष्य, तम्, स्वात्मानम्, आत्मस्थम्, उपाधिवर्जितम्, त्यजेत्, अशेषम्, जडम्, आत्मगोचरम् ॥ ४२ ॥

अ० प०-(वेदवाक्यतः) वेदवाक्योंसे। (गुरोः) गुरुके। (सकाशात्) समीपसे। (अपि) भी। (सञ्जातविद्यानुभवः) उत्पन्न हुआ है ज्ञानस्वरूप आत्माका अनुभव जिसको ऐसा पुरुष। (तम्) तिस। (उपाधिवर्जितम्) उपाधिरहित। (स्वात्मानम्) अपने आत्माको। (आत्मस्थम्) अपने हृदयमें स्थित। (निरीक्ष्य) देखकर। (अशेषम्) सम्पूर्ण। (आत्मगोचरम्) आत्माके विषे प्रतीत होनेवाले। (जडम्) जडपदार्थको। (त्यजेत्)त्यागदेय॥ ४२ ॥

भा०-परस्परके अध्यासके कारण मनका धर्म्म जड़पना आत्माके विषे प्रतीत होनेलगैहै, इसकारण पुरुष वेदके वचनोंकरके और गुरुके मुखसे महावाक्यका अर्थ श्रवण करै, तदनन्तर तिस महावाक्यके अर्थका निरन्तर चिन्तनकरके ज्ञानका अनुभव होताहै, और अपना आत्मा सम्पूर्ण उपाधियोंसे रहित है अपने हृदयके विषे वर्तमान है, ऐसा साक्षात्कार होनेपर सम्पूर्ण इन्द्रियादि जड़पदार्थोंके विषयमें उदासीन होकर रहै ॥ ४२ ॥

प्रकाशरूपोऽहमजोऽहमद्वयो-
ऽसकृद्विभातोऽहमतीव निर्मलः।
विशुद्धविज्ञानघनो निरामयः
सम्पूर्णआनन्दमयोऽहमक्रियः॥ ४३ ॥

पद०-प्रकाशरूपः, अहम्, अजः, अहम्, अद्वयः, असकृत्विभातः, अहम्, अतीव, निर्मलः, विशुद्धविज्ञानघनः, निरामयः, सम्पूर्णः, आनन्दमयः, अहम् अक्रियः॥ ४३ ॥

अ० प०-(अहम्) मैं। (प्रकाशरूपः) प्रकाश स्वरूप हूं। (अहम्)मैं। (अजः) जन्मरहित हूं। (अहम्) मैं। (अद्वयः)स-

जातीयविजातीयभेदरहित हूँ। (असकृद्विभातः) वारम्वार अनुभवमें आनेवाला। (च+) भी हूँ। (अहम्) मैं। (अतीव निर्मलः) अत्यन्त शुद्ध हूँ। (अहम्) मैं। (विशुद्धविज्ञानघनः) निर्म्मलज्ञानकरके पूर्ण। (निरामयः) दुःखरहित अथ वा अभिमानशून्य। (सम्पूर्णः) पूर्णरूप। (आनन्दमयः) आनन्दरूप। (अक्रियः) परिणामरहित। (च) भी हूँ॥ ४३॥

भा०-जाननेके योग्य आत्मस्वरूप यह है कि-मैं स्वप्रकाश हूँ, मेरा जन्म नहीं होता है, मैं अद्वितीय हूँ अर्थात् मेरेसे भिन्न कोई दूसरा नहीं है, मैं नित्यप्रकाशवान्, अत्यन्त निर्म्मल अर्थात् जिसको माया चलायमान नहीं करसकै ऐसा, शुद्धज्ञानपरिपूर्ण, कर्तृत्व आदि अभिमान न करनेवाला, व्यापक और आनन्दरूप हूँ, मेरा रूपान्तर (परिणाम) नहीं होताहै॥ ४३॥

सदैव मुक्तोहमचिन्त्यशक्तिमा-
नतीन्द्रियज्ञानमविक्रियात्मकः।
अनंतपारोहमहर्निशं बुधै-
र्विभावितोहं हृदि वेदवादिभिः॥ ४४॥

पद०-सदा, एव, मुक्तः, अहम्, अचिंत्यशक्तिमान्; अतीन्द्रियज्ञानम् अविक्रियात्मकः; अनन्तपारः, अहम्; अहर्निशम्, वुधैः, विभावितः, अहम्, हृदि, वेदवादिभिः॥ ४४॥

अ०प०-(अहम्) मैं। (सदा) त्रिकालमें (एव) ही। (मुक्तः) मुक्त हूँ। (अहम्) मैं। (अचिन्त्यशक्तिमान्) जिसकी शक्ति कल्पनासे पर है ऐसा। (अतीन्द्रियज्ञानम्) इन्द्रियोंकरके न जानाजाय रूप जिसका ऐसा(च+) और।

(अविक्रियात्मकः) विकाररहित है रूप जिसका ऐसा। (अस्मि+ हूँ। (अहम्) मैं। (अनन्तपारः) जिसका पार अनन्त है ऐसा। (अस्मि+) हूँ। (अहम्) मैं। (वेदवादिभिः) वेदपठन करनेवाले। (बुधैः) विद्वानोंकरके। (अहर्निशम्) रात्रि दिन। (हृदि) हृदयमें। (विभावितः) चिन्तन करा हुआ। (अस्मि+) हूँ॥ ४४॥

भा०—मैं नित्यमुक्त हूँ, मेरी शक्ति कल्पनासे पर है, इन्द्रियोंसे न होनेवाला जो ज्ञान वह मेरा रूप है, मेरा परिणाम नहीं होता है, मेरा अन्त और पार नहीं है, अर्थात् मैं त्रिकालमें सर्वत्र विद्यमान रहताहूँ! वेदके जाननेवाले विद्वान् रात्रि दिन अपने हृदयके विषे जिसका विचार करते हैं वह मैंही हूँ॥ ४४॥

एवंसदात्मानमखण्डितात्मना
विचारमाणस्य विशुद्धभावना।
हन्यादविद्यामचिरेण कारकै
रसायनं यद्वदुपासितं रुजः॥ ४५॥

पद०—एवम्, सदा, आत्मानम्, अखण्डितात्मना, विचारमाणस्य, विशुद्धभावना, हन्यात्, अविद्याम्, अचिरेण, कारकैः, रसायनम्, यद्वत्, उपासितम्, रुजः॥ ४५॥

अ० प०—(एवम्) इसप्रकार। (सदा) सब समयमें। (अखण्डितात्मना) पूर्णरूप आत्माके। (विचारमाणस्य) विचार करतेहुए पुरुषके। (विशुद्धभावना) परमशुद्ध विचार अर्थात् ज्ञान। (उदेति+) उदय होता है। (सा+) वह ज्ञान। (यद्वत्) जिसप्रकार। (उपासितम्) सेवन कराहुआ। (रसायनम्) औषध। (रुजः) रोगोंको। (त-

था+) तिसीप्रकार । (अविद्याम्) अज्ञानको । (अचिरेण) शीघ्रही । (हन्यात्) नाश करदेता है ॥ ४५ ॥

भा०—श्रीरामचन्द्रजी बोले कि हे लक्ष्मण ! पुरुष अपने मनको विषयोंके समीप न जाने देय और निरन्तर विचार करे तौ उसके अन्तःकरणकी वृत्ति ब्रह्माकार होजातीहै, इस ब्रह्माकार वृत्तिरूप शुद्धभावनाके उत्पन्न होतेही तत्काल अविद्याको और उसके साथही पुनर्जन्मके कारण जो कर्म्म तिनका इसप्रकार नाश करदेतीहै, जिसप्रकार तीव्र रसायन (औषध) सेवन करतेही रोगोंका नाश करदेतीहै ॥ ४५ ॥

विविक्त आसीन उपारतेन्द्रियो
विनिर्जितात्मा विमलान्तराशयः ।
विभावयेदेकमनन्यसाधनो
विज्ञानदृक् केवल आत्मसंस्थितः ॥ ४६ ॥

पद०—विविक्ते, आसीनः, उपारतेन्द्रियः, विनिर्जितात्मा, विमलान्तराशयः, विभावयेत्, एकम्, अनन्यसाधनः, विज्ञानदृक्, केवलः, आत्मसंस्थितः ॥ ४६ ॥

अ० प०—(विविक्ते) एकान्तमें । (आसीनः) बैठा हुआ ।) उपारतेन्द्रियः) विषयोंसे हटाकर वशमें करी हैं इन्द्रियें जिसने ऐसा । (विनिर्जितात्मा) पूर्ण जीता है अन्तःकरण जिसने । (विमलान्तराशयः) अत्यन्त शुद्ध है चित्त जिसका । (विज्ञानदृक्) आत्मज्ञान है दृष्टि जिसकी ऐसा । (अनन्यसाधनः) नहीं है ज्ञानके सिवाय अन्य साधन जिसके ऐसा । (केवलः) अद्वितीय । (आत्मसंस्थितः) आ-

त्माके विषे है संस्था जिसकी ऐसा । (सन्+) होकर । (एक-
म्) एक परमात्माको । (विभावयेत्) विचार करै ॥ ४६ ॥
भा०-ध्यान किस रीतिसे करना चाहिये सो कहतेहैं कि-
पुरुष जहाँ कोई विघ्न न हो ऐसे एकान्त स्थानमें योगशास्त्रमें
कहीहुई रीतिके अनुसार पद्मासन अथवा अन्य किसी आसन-
को बाँधकर बैठै, इन्द्रियोंको विषयोंसे हटावै, प्राणायाम आदिके
द्वारा मनको जीतकर शुद्ध करै, तत्त्वज्ञानके सिवाय अन्यभी
कोई मोक्षकी प्राप्तिका उपाय होगा, ऐसे भ्रमको छोड़देय, किसी
विषयमें आसक्ति न करै, केवल आत्मज्ञानकी ओरही दृष्टि लगावै
आत्माके विषे लीन होकर अद्वितीय अर्थात् सजातीय, विजातीय
और स्वगतभेदशून्य आत्माका ध्यान करै ॥ ४६ ॥

विश्वं यदेतत्परमात्मदर्शनं
विलापयेदात्मनि सर्वकारणे ।
पूर्णश्चिदानन्दमयोऽवतिष्ठते
न वेद बाह्यं न च किञ्चिदान्तरम् ।४७।

पद०-विश्वम्, यत्, एतत्, परमात्मदर्शनम्,
विलापयेत्, आत्मनि, सर्वकारणे, पूर्णः चिदानन्द-
मयः, अवतिष्ठते, न, वेद, बाह्यम्, न, च, किञ्चित्,
आन्तरम् ॥ ४७ ॥

अ० प०-(यत्) जो । (एतत्) यह । (परमात्मदर्शनम्)
परमात्मा प्रकाशित करता है जिसको ऐसा । (विश्वम्) वि-
श्व है । (तत्) उसको । (सर्वकारणे) सबके कारण । (आ-
त्मनि) आत्माके विषे । (विलापयेत्) लीन कर देय ।
(सः+) वह । (पूर्णः) पूर्ण । (चिदानन्दमयः) चैतन्य

और आनन्दस्वरूप । (सन्+) होकर । (अवतिष्ठते) स्थित होता है । (बाह्यम्) बाहरके दृश्य पदार्थोंको (न) नहीं । (वेद) जानता है । (आन्तरम्) अन्तरके । (च) भी । (किञ्चित्) कुछभी पदार्थोंको । (न) नहीं । (वेद) जानता है ॥ ४७ ॥

भा०-"तस्य भासा सर्वमिदं भाति-तिस परमेश्वरके प्रकाशसे यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होताहै" इत्यादि श्रुतियोंके अनुसार परमात्मा जगत्का प्रकाशित करनेवाला है, और मायाकी सन्निधिसे वह परमात्माही जगत्का उपादान कारण होताहै, ऐसा बुद्धिमान् पुरुप मानतेहैं, पुरुप इस सम्पूर्ण जगत्को आत्मस्वरूपके विषे लीन करै अर्थात् परमात्माकी सत्तासे भिन्न जगत्की सत्ता नहीं है ऐसा जानै, इसप्रकार साधना करनेवाला पुरुप पूर्ण, ज्ञानस्वरूप, आनन्दमय होकर स्थित होताहै फिर उसको बाह्य अथवा आन्तर विपयोंका कुछभी ज्ञान नहीं होताहै ॥ ४७ ॥

पूर्वं समाधेरखिलं विचिन्तये-
दोङ्कारमात्रं सचराचरं जगत् ।
तदेव वाच्यं प्रणवो हि वाचको
विभाव्यते ज्ञानवशान्न बोधतः ॥४८॥

पद०-पूर्वम्, समाधेः, अखिलम्, विचिन्तयेत्, ॐकारमात्रम्, सचराचरम्, जगत्, तत्, एव, वाच्यम्, प्रणवः, हि, वाचकः, विभाव्यते, अज्ञानवशात्, न, बोधतः ॥ ४८ ॥

अ०प०-(समाधेः) समाधिके । (पूर्वम्) पहिले । (अखिलम्) सम्पूर्ण । (चराचरम्) स्थावर और जङ्गम । (ज-

गत्) जगत्को। (ॐकारमात्रम्) ॐकारमात्र। (विचिन्तयेत्) विचारै। (तत्) वह जगत्। (एव) ही। (वाच्यम्) कथनका विषय। (प्रणवः) ॐकार। (वाचकः) कहनेवाला। (अज्ञानवशात्) अज्ञानके कारण। (विभाव्यते) कल्पना किया जाता है। (हि) यह शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है। (बोधतः) ज्ञानके कारण। (न) नहीं॥ ४८॥

भा०—सम्पूर्ण विषयोंमें आसक्तिको त्यागकर जो ब्रह्माकारवृत्ति होतीहै उसे 'समाधि' कहते हैं, तिस समाधिके सिद्ध होनेसे पहिले पुरुषका कर्तव्य यह है कि, वह पुरुष संपूर्ण स्थावर और जङ्गमपदार्थसहित जो जगत् सो ॐकारमात्र है, अर्थात् ॐकार शब्दका अर्थ है,ऐसा विचार करे,जगत् (ॐकार) का वाच्य अर्थात् ॐकारशब्दसे निकलनेवाला अर्थ है, और प्रणव जगत्का वाचक अर्थात् नाम है, यह कल्पना शास्त्रमें प्रसिद्ध है, यह वृत्ति जबतक अज्ञान होताहै तबतकही रहतीहै, और ज्ञान होतेही नष्ट होजातीहै, क्योंकि ज्ञान सम्पूर्ण वृत्तियोंका नाशक है॥४८॥

अकारसंज्ञः पुरुषो हि विश्वको
ह्युकारकस्तैजस ईर्यते क्रमात्।
प्राज्ञो मकारः परिपठ्यतेऽखिलैः
समाधिपूर्वं न तु तत्त्वतो भवेत्॥४९॥

भा०—अकारसंज्ञः, पुरुषः, हि, विश्वकः, हि, उकारकः, तैजसः, ईर्यते, क्रमात्, प्राज्ञः, मकारः, परिपठ्यते, अखिलैः, समाधिपूर्वम्, न, तु, तत्त्वतः, भवेत्, ॥ ४९ ॥

अ०प०—(अखिलैः) सम्पूर्ण वेदादिकरके। (अकारसंज्ञः) अकारनामवाला। (पुरुषः) पुरुष। (हि) निश्चय-

करके । (विश्वकः) जाग्रत् अवस्थाका साक्षी है । (उकारः) उकार । (हि) निश्चयकरके । (तैजसः) स्वप्नावस्थाका साक्षी लिङ्गशरीरका अभिमानी । (क्रमात्) क्रमसे । (ईर्यते) कहाजाता है । (मकारः मकार । (प्राज्ञः) सुषुप्तिअवस्थाका साक्षी । (परिपठ्यते) कहा जाता है । (इयम्+) यह । (भावना+) वृत्ति । (समाधेः) समाधिके । (पूर्वम्) पहिले होती है । (तत्त्वतः) तत्त्वज्ञान होनेसे । (तु) तौ । (न) नहीं । (भवति+) होती है ॥ ४९ ॥

भा०—'ओम्' इस शब्दका अर्थ सम्पूर्ण जगत् किसप्रकार होताहै सो वर्णन करतेहैं कि-'अ+उ+म्' इन तीन अक्षरोंकी सन्धि होकर'ओम्' यह शब्द सिद्ध होताहै, शरीरके विषे जाग्रत् अवस्थाका साक्षी अर्थात् जागनेके समयके व्यवहारोंको देखनेवाला जो पुरुष है-वेदान्तशास्त्रमें जिसे 'विश्व' कहतेहैं उसकी 'अ' संज्ञा है, और क्रमसे दूसरा वर्ण जो 'उ' है सो स्वप्नावस्थाके साक्षी जिसको वेदान्तशास्त्रमें 'तैजस' कहतेहैं उसका है तथा सम्पूर्ण वेदशास्त्रोंको ज्ञाता सुषुप्तिके साक्षी जिसकी वेदान्तशास्त्रमें 'प्राज्ञ' संज्ञा है, उस पुरुषको 'म्' कहतेहैं, यह सम्पूर्ण प्रकार समाधिके पूर्वका है, तत्त्वज्ञान होनेके अनन्तर फिर यह विचार (वृत्ति) नहीं रहता है, क्योंकि तत्त्वज्ञान सम्पूर्ण वृत्तियोंका नाशक है ॥ ४९ ॥

विश्वं त्वकारं पुरुषं विलापये-
दुकारमध्ये बहुधा व्यवस्थितम् ।
ततो मकारे प्रविलाप्य तैजसं
द्वितीयवर्णं प्रणवस्य चान्तिमे ॥ ५० ॥

पद०—विश्वम्, तु, अकारम्, पुरुषम्, विलापयेत्, उकारमध्ये, बहुधा, व्यवस्थितम्, ततः, मकारे, प्रविलाप्य, तैजसम्, द्वितीयवर्णम्, प्रणवस्य, च, अन्तिमे ॥ ५० ॥

अ० प०— (बहुधा) अनेक प्रकारकरके । (व्यवस्थितम्) स्थित । (विश्वम्) विश्वनामवाले । (पुरुषम्) पुरुष । (आकारम्) आकारको । (तु) तौ । (उकारमध्ये) उकारके विषे । (विलापयेत्) लीन करदेय । (ततः) तदनन्तर । (अन्तिमे) अन्तके । (मकारे) मकारमें । (तैजसम्) तैजससंज्ञक । (प्रणवस्य) ओंकारके । (द्वितीयवर्णम्) द्वितीय वर्णको । (च) भी । (प्रविलाप्य) लीन करके ॥ ५० ॥

भा०—जगत्को आत्मस्वरूपमें लीन कर देय ऐसा ४७ वें श्लोकमें कहा है सो लीन करनेके प्रकारको दिखाते हैं कि-स्थूल देहका अभिमान करनेवाले 'विश्व' संज्ञक पुरुष और उसके वाचका 'अ' इस अक्षरको उकारके विषे लीन करै, तदनन्तर स्वप्नावस्थाके अभिमानी तैजसपुरुष और उसके वाचक ओंकारमेंके द्वितीय वर्ण उकारको प्रणवके अन्तके अक्षरमें अर्थात् मकारमें लीन करै ॥ ५० ॥

मकारमप्यात्मनि चिद्घने परे
विलापयेत्प्राज्ञमपीह कारणम् ।
सोऽहं परब्रह्म सदा विमुक्तिम-
द्विज्ञानदृङ्मुक्तमुपाधितोमलः ॥ ५१ ॥

पद०—मकारम्, अपि, आत्मनि, चिद्घने, परे, विलापयेत्, प्राज्ञम्, अपि, इह, कारणम्, सः,

अहम्, परब्रह्म, सदा, विमुक्तिमत्, विज्ञानदृक्, मुक्तः, उपाधितः, अमलः ॥ ५१ ॥

अ० प०-(मकारम्) मकारको। (अपि) और। (कारणम्) कारणत्वके अभिमानी। (प्राज्ञम्) प्राज्ञसंज्ञक पुरुषको। (अपि) भी। (इह) यहाँ। (चिद्घने) ज्ञानपूर्ण। (परे) सबसे पर। (आत्मनि) आत्माके विषे। (विलापयेत्) लीन करै। (ततः+) तदनन्तर। (विज्ञानदृक्) तत्त्वज्ञानही है दृष्टि जिसकी। (उपाधितः) उपाधिसे। (मुक्तः) मुक्त। (अमलः) निर्दोष। (सः) वह। (अहम्) मैं। (सदा) त्रिकालमें। (विमुक्तिमत्) नित्यमुक्त। (पर) पर। (ब्रह्म) ब्रह्म हूँ। (इति+) इसप्रकार। (भावयेत्+) विचारै ॥ ५१ ॥

भा०-तदनन्तर 'मकार' और मकारका वाच्य जो अपनेको कारणत्वका अभिमानी माननेवाला 'प्राज्ञ' संज्ञकपुरुष तिसको चैतन्यमय परमात्माके विषे मिलादेय,और अन्तमें 'सम्पूर्ण जगत् जिसमें लीन होता' है वह नित्यमुक्त परब्रह्म मैंही हूं, ऐसी भावना करै, इसप्रकारकी भावना होनेका साधन तत्त्वज्ञान है, इसप्रकार भावना करनेमें समर्थ पुरुष उपाधियोंसे रहित अर्थात् रागद्वेषादिमलरहित होजाताहै,इसकारण उस पुरुषकी ब्रह्मरूपमें एकताकी भावना होनेमें कोई त्रुटि नहीं होतीहै ॥ ५१ ॥

एवं सदा जातपरात्मभावनः
स्वानन्दतुष्टः परिविस्मृताखिलः।
आस्ते स नित्यात्मसुखप्रकाशकः
साक्षाद्विमुक्तोऽचलवारिसिन्धुवत्॥५२॥

पद०-एवम्, सदा, जातपरात्मभावनः, स्वान-

न्दतुष्टः, परिविस्मृताखिलः आस्ते, सः, नित्यात्मसुखप्रकाशकः, साक्षात्, विमुक्तः, अचलवारिसिन्धुवत् ॥ ५२ ॥

अ० प०–(एवम्) इसप्रकार । (सदा) सब कालमें । (जातपरात्मभावनः) हुई है परमात्माके रूपमें एकतारूप स्थिति जिसकी ऐसा । (परिविस्मृताखिलः) सर्वथा विसरण हुआ है सम्पूर्ण स्त्रीपुत्रादिका जिसको ऐसा । (स्वानन्दतुष्टः) निजानन्दमात्रसे सन्तोषको प्राप्त होनेवाला । (साक्षात्) प्रत्यक्ष । (नित्यात्मसुखप्रकाशकः) नित्य आत्मसुखका प्रकाशही है रूप जिसका ऐसा । (सः) वह । (विमुक्तः) मुक्त । (सन्+) होकर । (अचलवारिसिन्धुवत्) निश्चल है जल जिसमें ऐसे समुद्रकी समान । (आस्ते) होता है ॥ ५२ ॥

भा०—इसप्रकार जिसपुरुषकी नित्य परमात्मस्वरूपमें एकताकी भावना दृढ़ होगई है वह पुरुष सम्पूर्ण पुत्रदेहादिको भूलजाता है अर्थात् पुत्रदेहआदि विषयोंसे उत्पन्न होनेवाले जो आनन्द वह परिणामी और दुःखरूप होतेहैं, इसकारण तिन पुत्रदेहआदिसे विरक्त होजाताहै, और अपने स्वरूपके आनन्दसे सन्तुष्ट होताहै, और साक्षात् नित्य अर्थात् जिसको उपाधियोंसे उत्पन्न होनेवाले नामरूप नहीं हैं ऐसा जो आत्मा तिस, आत्माके सुखका प्रकाशही है रूप जिसका ऐसा होताहै । वह जीवन्मुक्त पुरुष निश्चल जलसे भरेहुए समुद्रकी समान शान्त होताहै ॥ ५२ ॥

एवं सदाभ्यस्तसमाधियोगिनो
निवृत्तसर्वेन्द्रियगोचरस्य हि ।

विनिर्जिताशेषरिपोरहं सदा
दृश्यो भवेयं जितषड्गुणात्मनः ॥५३॥

पद०–एवम्, सदा, अभ्यस्तसमाधियोगिनः, निवृत्तसर्वेन्द्रियगोचरस्य, हि, विनिर्जिताशेषरिपोः, अहम्, सदा, दृश्यः, भवेयम्, जितषड्गुणात्मनः ॥ ५३ ॥

अ० प०–(एवम्) इसप्रकार । (सदा) सर्वकालमें । (अभ्यस्तसमाधियोगिनः) अभ्यास करी है समाधि जिसने ऐसे । (विनिर्जिताशेषरिपोः) पूर्णरीतिसे जीते हैं सम्पूर्ण शत्रु जिसने ऐसे । (जितषड्गुणात्मनः) स्वाधीन करलिया है 'सर्वज्ञत्व, नित्यत्व आदि षड्गुणसम्पन्न आत्मा जिसने ऐसे पुरुषको । (अहम्) मैं । (सदा) सर्वदा । (दृश्यः) दीखता हुआ । (भवेयम्) होऊँगा ॥ ५३ ॥

भा०–इसप्रकार जो पुरुष नित्य समाधियोगका अभ्यास करताहै, सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको त्याग देताहै, कामक्रोधादि सम्पूर्ण शत्रुओंको जीत लेताहै, और सर्वज्ञत्व, नित्यत्व, नित्यतृप्तत्व, ज्ञानरूपत्व, स्वतन्त्रत्व, तथा नित्यस्फूर्तिरूप षड्गुणसम्पन्न आत्माको वशमें करलेता है, हे लक्ष्मण! उस पुरुषको नित्य मेरा दर्शन मिलताहै ॥ ५३ ॥

ध्यात्वैनमात्मानमहर्निशं मुनि-
स्तिष्ठेत्सदा मुक्तसमस्तबंधनः ।
प्रारब्धमश्नन्नभिमानवर्जितो
मय्येव साक्षात्प्रविलीयते ततः ॥ ५४ ॥

पद०–ध्यात्वा, एनम्, आत्मानम्, अहर्निशम्,

मुनिः, तिष्ठेत्, सदा, मुक्तसमस्तबन्धनः, प्रारब्धम्, अश्नन्, अभिमानवर्जितः, मयि, एव, साक्षात्, प्रविलीयते, ततः ॥ ५४ ॥

अ० प०–(एवम्) इसप्रकार । (मुनिः) मनन करनेवाला पुरुष । (आत्मानम्) आत्माको । (अहर्निशम्) रात्रिदिन । (ध्यात्वा) ध्यान करके । (सदा) सर्वदा । (मुक्तसमस्तबन्धनः) दूर होगए हैं सम्पूर्ण बन्धन जिसके ऐसा (सन्+) होकर । (तिष्ठेत्) स्थित होय । (ततः) तदनन्तर । (अभिमानवर्जितः) अभिमानरहित । (सन्+) होकर । (प्रारब्धम्) प्रारब्धकर्म्मको । (अश्नन्) भोगताहुआ । (साक्षात्) साक्षात् । (मयि) मेरे विषे । (एव) ही । (प्रविलीयते) लीन होजाता है ॥ ५४ ॥

भा०–मुनि इसप्रकार सम्पूर्ण बंधनोंको त्यागकर नित्य रात्रिदिन आत्मचिन्तन करता रहै, प्रारब्ध कर्म्मोंके कारण प्राप्त हुए भोगोंको भोगै, परन्तु अभिमानमात्रका त्याग करदेय, तब अन्तमें उसको साक्षात् मेरे स्वरूपकी प्राप्ति होतीहै ॥ ५४ ॥

आदौ च मध्ये च तथैव चान्ततो
भवं विदित्वा भयशोककारणम् ।
हित्वा समस्तं विधिवादचोदितं
भजेत्स्वमात्मानमथाखिलात्मनाम् ५५

पद०–आदौ, च, मध्ये, च तथा, एव, च, अन्ततः, भवम् विदित्वा, भयशोककारणम्, हित्वा, समस्तम्, विधिवादचोदितम्, भजेत्, स्वम्, आत्मानम्, अथ, अखिलात्मनाम् ॥ ५५ ॥

अ० प०-(भवम्) संसारको। (आदौ) आदिमें। (मध्ये) मध्यमें। (तथा) तिसीप्रकार। (एव) हि। (अन्ततः) अन्तमें। (च) भी। (भयशोककारणम्) भय और शोकका कारण। (विदित्वा) जानकर। (विधिवादचोदितम्) विधिवाक्योंकरके करनेके अर्थ कहेहुए। (समस्तम्) सबको। (हित्वा) त्यागकर। (च) और। (अथ) अनन्तर। (अखिलात्मनाम्) सम्पूर्ण आत्माओंको। (स्वम्) अपने। (आत्मानम्) आत्माको। (भजेत्) सेवन करै ॥ ५५ ॥

भा०-यह संसार प्रारम्भमें, मध्यमें तथा अन्तमें, भय और शोकका देनेवाला है; ऐसा जानकर मुमुक्षु पुरुष वेदके विषे "स्वर्गकामो यजेत-स्वर्गकी इच्छा करनेवाला यज्ञ करै" इत्यादि विधिवाक्योंकरके करनेके निमित्त कहे हुए कर्म्मोंका त्याग करदेय, और सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मा जो 'परमेश्वर' मैं हूँ तिस मेरी भक्ति करै, यह संपूर्ण धर्म्मोंमें श्रेष्ठ धर्म्म है ॥ ५५ ॥

आत्मन्यभेदेन विभावयन्निदं
भवत्यभेदेन मयात्मना तदा।
यथा जलं वारिनिधौ यथा पयः
क्षीरे वियद्व्योम्न्यनिले यथाऽनिलः॥५६॥

पद०-आत्मनि, अभेदेन, विभावयन्, इदम्, भवति, अभेदेन, मया, आत्मना, तदा, यथा, जलम्, वारिनिधौ, यथा, पयः, क्षीरे, वियद्, व्योम्नि, अनिले, यथा, अनिलः ॥ ५६ ॥

अ० प०-(यदा) जब। (आत्मनि) आत्माके विषे। (इदम्) यह। (अभेदेन) एकताकरके। (विभावयन्) चिन्तन करता हुआ। (तिष्ठति+) स्थित होता है। (तदा)

तिस समय (यथा) जिस प्रकार। (वारिनिधौ) समुद्रमें। (जलम्) जल। (यथा) जिसप्रकार। (क्षीरे) दुग्धमें। (पयः) दुग्ध। (व्योम्नि आकाशके विषे। (वियत्) आकाश। (च+) और। (अनिले) वायुके विषे। (अनिलः) वायु। (तथा+) तिसप्रकार। (मया) मुझ। (आत्मना) ईश्वरकरके। (अभेदेन, भवति) अभिन्न होता है॥ ५६॥

भा०—मैं सम्पूर्ण प्राणियोंका आधार हूँ, मेरे स्वरूपके विषे जीव अभेदकरके है अर्थात् परमेश्वर और जीव एकही है, इस प्रकार भावना करताहुआ पुरुष, हे लक्ष्मण! मेरे विषे एकताको प्राप्त होताहै अर्थात् परमात्माके विषे लीन होताहै. जिसप्रकार नदियोंका जल समुद्रके विषे प्रवेश करतेही समुद्ररूप होजाताहै, जैसे दुग्ध दुग्धमें पड़ा कि एकरूप होजाताहै, घटके भीतरका आकाश घट फूटतेही जिसप्रकार महाकाशमें मिलताहै, और जिसप्रकार लोहारकी धौंकनीका वायु निकलकर वायुपुञ्जमें मिलकर एकरूप हो जाता है, तिसीप्रकार जीवात्मा परमात्माके विषे एकताको प्राप्त होजाताहै॥ ५६॥

इत्थं यदीक्षेत हि लोकसंस्थितो
जगन्मृषैवेति विभावयन्मुनिः।
निराकृतत्वाच्छ्रुतियुक्तिमानतो
यथेन्दुभेदो दिशि दिग्भ्रमादयः॥५७॥

पद०—इत्थम्, यदि, ईक्षते, हि, लोकसंस्थितः, जगत्, मृषा, इव, इति, विभावयन्, मुनिः, निराकृतत्वात्, श्रुतियुक्तिमानतः, यथा, इन्दुभेदः, दिशि, दिग्भ्रमादयः॥ ५७॥

अ० प०-(लोकसंस्थितः) लोकके विषे स्थित । (हि) भी । (मुनिः) ज्ञानी । (जगत्) जगत् । (मृषा) मिथ्या । (एव) ही है । (इति) इसप्रकार । (विभावयन्) विचारता । (सन्+) हुआ । (इत्थम्) इसप्रकार । (यदि) जो । (ईक्षते) देखता है । (तदा+) तौ । (यथा) जिसप्रकार । (इन्दुभेदः) चन्द्रमाका अनेकरूपसे दीखना । (च+) और । (दिग्भ्रमादयः) दिशाओंके विषे भ्रम आदि । (तथा+) तिसप्रकार । (श्रुतियुक्तिमानतः) श्रुति और युक्तिकी प्रमाणसे । (निराकृतत्वात्) दूर करनेसे । (निवृत्तजगत्सत्यत्वभ्रमः) निवृत्त होगया है जगत्‌की सत्यताका भ्रम जिसका ऐसा (भवति+) होता है ॥ ५७ ॥

भा०-'जो पुरुष प्रारब्धकर्म्मोंके कारण जीवन्मुक्तदशामें लौकिकव्यवहारकोभी करता रहै, उस पुरुषको 'जगत् मिथ्या है' इसप्रकार विचार करते करते अभेदज्ञान होतेही 'जगत्‌की सत्यताकी भ्रान्ति स्वयं नष्ट होजातीहै,' क्योंकि श्रुति और युक्ति दोनोंसे 'जगत् मिथ्याहै' ऐसा सिद्ध होता है, वेदमें तौ "अतोऽन्यदार्तम्-आत्मासे अन्य सब मिथ्या है" ऐसा कहा है, और युक्ति कहती है कि जो जो पदार्थ दीखतेहैं वह सम्पूर्ण सीपीमें भासनेवाले रजत (चाँदी) की समान मिथ्या हैं, जिसप्रकार मनुष्यको कभी कभी पित्तआदि विकारोंके कारण एक चन्द्रमाके अनेक चन्द्रमा दीखने लगतेहैं, दिशाभ्रम होजाताहै अर्थात् पूर्वदिशा दक्षिण प्रतीत होने लगतीहै, और दक्षिण उत्तर प्रतीत होनेलगतीहै, घूमनी (रोग) आतेही पृथ्वीपर स्थित वृक्ष तथा गृह आदि घूमतेहुए प्रतीत होने लगते हैं, परन्तु यह सम्पूर्ण भ्रम 'चन्द्रमा एक है,' 'अमुक दिशा पूर्व है' मुझे घूमनी आगई है,' इस प्रकार ज्ञान होतेही दूर होजाताहै, तिसीप्रकार आत्मतत्त्वका ज्ञान होतेही 'जगत् सत्य है' ऐसी भ्रान्ति नष्ट होजातीहै ॥ ५७ ॥

यावन्न पश्येदखिलं मदात्मकं
तावन्मदाराधनतत्परो भवेत् ।
श्रद्धालुरत्यूर्जितभक्तिलक्षणो
यस्तस्य दृश्योहमहर्निशं हृदि ॥ ५८ ॥

पद०–यावत्, न, पश्येत्, अखिलम्, मदात्मकम्, तावत्, मदाराधनतत्परः, भवेत्, श्रद्धालुः, अत्यूर्जितभक्तिलक्षणः, यः, तस्य, दृश्यः, अहम्, अहर्निशम्, हृदि ॥ ५८ ॥

अ०प०–(यावत्) जबतक । (अखिलम्) सम्पूर्णको । (मदात्मकम्) मेरा रूप । (न) नहीं । (पश्येत्) देखै । (तावत्) तबतक । (मदाराधनतत्परः) मेरा पूजन करनेमें तत्पर । (भवेत्) होय । (यः) जो । (श्रद्धालुः) विश्वास करनेवाला पुरुष । (अत्यूर्जितभक्तिलक्षणः) अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुई भक्ति है चिह्न जिसका ऐसा । (भवेत्+) होय । (अहम्) मैं । (तस्य) उसके । (हृदि) हृदयमें । (अहर्निशम्) रात्रिदिन । (दृश्यः) दीखनेवाला । (भवामि+) होताहूँ ॥ ५८ ॥

भा०–श्रीरामचन्द्रजी बोले कि हे लक्ष्मण ! इसप्रकार ज्ञान होनेका उपाय केवल मेरी आराधनाही है, पुरुषको जबतक जिसप्रकार सर्पकी प्रतीतिकी आधार रज्जु है, तिसी प्रकार इस सम्पूर्ण जगत्के आधार परमेश्वर श्रीरामचन्द्र हैं, ऐसी दृष्टि प्राप्त नहीं होय तबतक उस पुरुषको योग्य है कि 'भगवत्का पूजनही ज्ञानका उपाय है' ऐसा विश्वास करके मेरा पूजन कर-

नेमें तत्पर होय, जिसपुरुषमें अत्यन्त बढ़ीहुई मेरी भक्तिरूप चिह्न दीखै उसके हृदयके विषे मैं स्वयं नित्य प्रकट होताहूं ॥ ५८ ॥

रहस्यमेतच्छ्रुतिसारसंग्रहं
मया विनिश्चित्य तवोदितं प्रिय ।
यस्त्वेतदालोचयतीह बुद्धिमान्
स मुच्यते पातकराशिभिः क्षणात् ॥५९॥

पद०–रहस्यम्, एतत्, श्रुतिसारसंग्रहम्, मया, विनिश्चित्य, तव, उदितम्, प्रिय, यः, तु, एतत्, आलोचयति, इह, बुद्धिमान्, सः, मुच्यते, पातकराशिभिः, क्षणात् ॥ ५९ ॥

अ० प०–(प्रिय) हे प्रिय लक्ष्मण ! । (मया) मैंने । (श्रुतिसारसंग्रहम्) वेदोंके सारका संग्रह । (विनिश्चित्य) विचारकर । (एतत्) यह । (रहस्यम्) गुप्त अभिप्राय । (तव) तुम्हारे अर्थ । (उदितम्) कहा । (यः) जो । (बुद्धिमान्) विचारवान् पुरुष । (इह) इस संसारमें । (एतत्) इस रहस्यको । (आलोचयति) उत्तम रीतिसे विचारता है । (सः) वह । (पातकराशिभिः) पातकके समूहोंसे । (क्षणात्) क्षणभरमें । (मुच्यते) छूटजाता है ॥ ५९ ॥

भा०–श्रीरामचन्द्रजी बोले कि हे लक्ष्मण ! तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो, इसकारण मैंने सम्पूर्ण वेदोंके सारभूत अंशको जो कि अत्यन्तगुप्त है, सो तुम्हारे अर्थ वर्णनकरा, इसको गुप्तरीतिसे रखना चाहिये, सृष्टिके विषे जो बुद्धिमान् पुरुष इसका उत्तमरीतिसे विचार करताहै, वह पुरुष तत्काल पातकोंके समूहोंसे छूटजाता है ॥ ५९ ॥

भ्रातर्यदीदं परिदृश्यते जग-
न्मायैव सर्वं परिहृत्य चेतसा।
मद्भावनाभावितशुद्धमानसः
सुखी भवानन्दमयो निरामयः ॥ ६० ॥

पद०–भ्रातः, यदि, इदम्, परिदृश्यते, जगत्, माया, एव, सर्वम्, परिहृत्य, चेतसाः, मद्भावनाभावितशुद्धमानसः, सुखी, भव, आनन्दमयः, निरामयः ॥ ६० ॥

अ० प०–(भ्रातः) हे भ्रातः । (यत्) जो । (इदम्) यह (जगत्) जगत् । (परिदृश्यते) दीखता है । (तत्) वह । (माया) माया । (एव) ही है । (इति+) इसप्रकार (ज्ञात्वा+) जानकर । (चेतसा) चित्तसे । (सर्वम्) सबको । (परिहृत्य) त्यागकर । (मद्भावनाभावितशुद्धभावनः) मेरे चिन्तनसे शुद्ध है मन जिसका ऐसा । (सन्+) होकर । (तिष्ठ) स्थित हो । (निरामयः) दुःखरहित । (सन्+) होकर । (सुखी) सुखयुक्त । (च+) और । (आनन्दमयः) आनन्दस्वरूप । (भव) हो ॥ ६० ॥

भा०–हे भ्रातः ! यह जो जगत् दीखताहै, सो सब मायाही है, ऐसा समझकर सबको मनकरके त्यागदेओ, अर्थात् उदासीन होवो और अपनेको मेरेविषे एकताको प्राप्त होनेकी भावना करो तब तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध होयगा, और फिर तुम्हें दुःखकी प्राप्ति नहीं होयगी, और आनन्दमय होजाओगे यह मेरा आशीर्वाद है ॥ ६० ॥

य: सेवते मामगुणं गुणात्परं
हृदा कदा वा यदि वा गुणात्मकम् ।
सोऽयं स्वपादाञ्चितरेणुभिः स्पृशन्
पुनाति लोकत्रितयं यथा रविः ॥६१॥

भा०-यः, सेवते, माम्, अगुणम्, गुणात्, परम्, हृदा, कदा, वा, यदि, वा, गुणात्मकम्, सः, अयम्, स्वपादाञ्चितरेणुभिः, स्पृशन्, पुनाति, लोकत्रितयम्, यथा, रविः ॥ ६१ ॥

अ० प०-(यः) जो पुरुष (कदा-वा)कभीभी । (हृदा) हृदयकरकें । (अगुणम्) गुणरहित । (गुणात्) गुणसे । (परम्) पर । (यदि-वा) अथवा । (गुणात्मकम्) गुणरूप (माम्) मुझको । (उपासते) सेवन करता है । (सः) वह पुरुष । (अहम्) मेरारूप होजाता है । (सः+) वह पुरुष । (स्वपादाञ्चितरेणुभिः) अपने चरणोंसे लगीहुई धूलियोंकरके । (स्पृशन्)स्पर्श करता हुआ । (यथा) जैसे (रविः) सूर्य्य । (तथा) तिसी प्रकार । (लोकत्रितयम्) त्रिलोकीको । (पुनाति) पवित्र करता है ॥ ६१ ॥

भा०-हे लक्ष्मण ! मेरे विषे प्रकृतिके सत्त्व आदि गुण नहीं हैं, क्योंकि मैं त्रिगुणात्मक मायासे पर हूँ, परन्तु कभी कभी भक्तोंकी रक्षा करनेके निमित्त लोकोत्तर गुणोंकरके युक्त स्वरूपको स्वीकार करताहूँ, जो पुरुष जन्ममें कभीभी मेरे निर्गुण अथवा सगुण रूपको निर्म्मल अन्तःकरणसे ध्यान करताहै वह भक्त साक्षात् मेरा स्वरूप होजाताहै, वह पुरुष अपने चरणोंमें लगीहुई धूलिसे त्रिलोकीको इसप्रकार पवित्र करता, है जिसप्रकार सूर्य्य अपनी किरणोंसे जगत्को पवित्र करताहै ॥ ६१ ॥

विज्ञानमेतदखिलं श्रुतिसारमेकं
वेदान्तवेद्यचरणेन मयैव गीतम् ।
यः श्रद्धया परिपठेद्गुरुभक्तियुक्तो
मद्रूपमेति यदि मद्वचनेषु भक्तिः ॥६२॥

पद०-विज्ञानम्, एतत्, अखिलम्, श्रुतिसारम्, एकम्, वेदान्तवेद्यचरणेन, मया, एव, गीतम्, यः, श्रद्धया, परिपठेत्, गुरुभक्तियुक्तः, मद्रूपम्, इति, यदि, मद्वचनेषु, भक्तिः ॥ ६२ ॥

अ० प०-(यः) जो पुरुष । (गुरुभक्तियुक्तः) गुरुकी भक्तिकरके युक्त । (सन्+) होकर । (अखिलश्रुतिसारम्) सम्पूर्ण वेदोंके सारभूत । (एकम्) अद्वितीय । (वेदान्तवेद्यचरणेन) वेदान्तवाक्योंकरके जानने योग्य है चरित्र जिसका ऐसे । (मया) मुझकरके । (गीतम्) कथन करेहुए (एतत्) इस । (विज्ञानम्) तत्त्वज्ञानको । (श्रद्धया) श्रद्धाकरके । (परिपठेत्) पढै । (सः+) वह । (यदि) जो । (मद्वचनेषु) मेरे वचनोंमें । (भक्तिः) भक्ति है । (तर्हि+) तौ । (मद्रूपम्) मेरे रूपको । (एति) प्राप्त होताहै॥६२॥

भा०-हे लक्ष्मण ! जगत्की उत्पत्ति आदि जिसकी लीलाओंका ज्ञान उपनिषदोंके श्रवणकरनेसे होताहै, वह मैंही हूँ. और मैंने सम्पूर्ण वेदोंका सारभूत यह अद्वितीय तत्त्वज्ञान जो वर्णन करा है इसको जो पुरुष गुरुके विषे भक्तिकरके विश्वासपूर्वक पढैगा, उसको यदि उसकी मेरे वचनोंमें भक्ति है तौ, मेरे स्वरूपकी प्राप्ति होयगी ॥ ६२ ॥

धराधनुर्ग्रहेन्द्वब्दे वैक्रमे फाल्गुनेऽसिते
सप्तम्यां मन्दवारे वै प्रातर्व्याख्यामपीपरम्।

दो०—फाल्गुनकृष्णा सप्तमी, दिन शनिवार पवित्र।
प्रातकाल पूरण करी, भाषाज्ञानचरित्र॥ १॥
राम कही लक्ष्मण सुनी, यह गीता सुविचार।
जो याको चितमे धरैं, लहैं मुक्तिको द्वार॥ २॥

सो०—अन्वय और पदार्थ, पदच्छेद भावार्थ रचि।
निजको कियो कृतार्थ, पण्डित रामस्वरूपने॥ ३॥

दो०—श्रीभागीरथतनुजवर, हरिप्रसाद सुखऐन।
तिनआज्ञासों रची यह, टीका सबसुखदैन॥ ४॥

इति श्रीपश्चिमोत्तरदेशीयरुहेलखण्डान्तर्गतरामपुरवास्तव्येनाद्यश्वोमुरादाबादे कृतवसतिना भारद्वाजगोत्रोद्भवगौड़वंशावतंसश्रीयुतभोलानाथतनूजेन पण्डितरामस्वरूपशर्म्मणा विरचितया पदच्छेदान्वयसनाथीकृतया पदार्थदीपिकया भावार्थदीपिकया च भाषाटीकया सहिता श्रीमदध्यात्मरामायणान्तर्गता श्रीरामगीता समाप्तिमिता॥

द्विबाणाङ्कमही वर्षे शुचौ भौमे विशोधिता॥
कतिथौ रामगीतेयं रामभद्रेण धीमता॥ १॥

दो०—ग्राम सलेमाबादके, हरिप्रसादके बैन॥
शोध्यो पण्डित रामभद्रने, श्रीसुमेरुपुरऐन॥ २॥

वेदान्तमतदर्शन भाषावार्तिक.

सम्पूर्ण वेदान्तानुरागी अद्वैतप्रतिपादक महाशयोंको विदित हो कि-यह वेदान्तमतदर्शननामक भाषाग्रंथ अत्युत्तम है. इसमें दो खण्ड हैं तथा वेदान्तविधिविचारादि ५०प्रसंग हैं, जिन्होंमें १८२मत हैं सो. सब स्पष्ट २ लिखे हैं. और इसमें अनेक जगावोंपर सूत्र और श्रुतियोंकी प्रमाणैंभी दी हैं. उनका सविस्तर स्पष्ट अर्थभी लिख दिया है. और पहले जो महात्मावोंने ग्रंथ बनाये हैं उनमें कहीं कुछभी मतभेद नहीं हैं. जहां कहीं हैं भी वहां स्पष्ट भिन्न २ नहीं लिखे. और इसमें सब स्पष्ट लिखे हैं. इसके पठनपाठनसे सब मतोंका बोध हो सक्ता है. और भाषाभी अतीव मनोहर है. यह ग्रंथ भिक्षुकृत है. सो हमने इसे-'श्रीसुमेरपुरनिवासी विद्वद्वर पण्डित रामभद्रशर्मा-से शुद्ध कराय, अच्छे कागद तथा अच्छे टाइपमें मुद्रित किया है. इसकी प्रशंसा कहांतक लिखें? देखनेसेही मालूम पड़ेगी. क्योंकि प्रत्यक्षमें आदर्शका क्या काम? की० १२ आ. ट० २ आ.

हरिप्रसाद भगीरथजी,

ठि०—कालकादेवीरोड, रामवाडी,

मुंबई.